वैदिक समाजवाद के द्रष्टा

महर्षि दयानन्द

वैदिक समाजवाद

स्वामी अग्निवेश

राजधर्म प्रकाशन
रोहतक

प्रथमबार– ५००० मूल्य-१-५० रु०

समर्पण

राष्ट्र के करोड़ों निर्धन बच्चों को जो आज की युवा पीढ़ी से क्रान्ति की आशा लगाये हुए हैं।

❀ ओ३म् ❀

यस्य विश्वानि हस्तयो पंच क्षितीना वसु
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग दिव्ये वाश निर्जहि

वह
समाज का शोषणकर्त्ता
धन केन्द्रित कर लिया कि जिसने
निज हाथों में पांचों जन का
उसको पहचानो रे !
चीन्हो !
नष्ट करो उस जन द्रोही को
दिव्य बिजलियाँ बनकर उसपर टूट पड़ो रे !

अनुवादक
बशीर अहमद मयूख

गुरुनानक की वाणी

रत लागे कापड़ा, मैला होय पलीत
जो रत पीवे मानसा, क्यों कर निर्मल चीत ?

जब रक्त का एक बूंद भी कपड़े में लग जाने पर कपड़ा अपवित्र हो जाता है, तो जिसने मनुष्यों का खून पी रखा है उसका चित्त निर्मल कैसे हो सकता है ?

स्वामी विवेकानन्द की चेतावनी

ऐ भारत के उच्च वर्ग वालो ! तुम अपने को शून्य में लीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान में "नवभारत" का उदय होने दो। उसका उदय हल चलाने वाले किसानों की कुटिया से, मछुए, मोचियों और मेहतरों की झोपड़ियों से हो। बनिए की दुकान से, रोटी बेचने वाले को भट्ठी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों, हाटों और बाजारों से वह निकले। वह 'नवभारत' अमराइयों और जंगलों से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो।

ये साधारण लोग सहस्त्रों वर्षों से अत्याचार सहते आये हैं—बिना कुड़बुड़ाये उन्होंने यह सब सहा है और परिणाम में उन्होंने आश्चर्यकारक धैर्यशक्ति प्राप्त कर ली है। वे सतत् विपत्ति सहते रहे हैं जिससे उन्हें अविरल जीवनशक्ति प्राप्त हो गई है। मुट्ठी भर अन्न से पेट भरकर वे संसार को कँपा सकते हैं; उनको तुम केवल आधी रोटी दे दो, और देखोगे कि सारे संसार का विस्तार उनकी शक्ति के समावेश के लिए पर्याप्त न होगा। उनमें "रक्तबीज" की अक्षयजीवन शक्ति भरी है। भूतकाल के कंकाल ! देखो तुम्हारे सामने तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं—भावी भारतवर्ष खड़ा है। अपने खजाने की उन पिटारियों को और उन रत्नजड़ित मुद्राओं को, उनके बीच जितनी जल्दी हो सके, फेंक दो और तुम हवा में मिल जाओ, फिर कभी दिखायी न दो।

सब सुखी हों......

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुखभागभवेत

यह धन किसका है ?

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनं ॥
(यजु० ४०/१)

सबका अधिकार समान

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवोयुनज्मि
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः
(अथर्व० ३/३०/६)

वेद का आदेश—

संपत्ति व्यक्ति की नहीं, समाज की हो

ओ३म् । त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंच देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि ॥
(अ० ३/४/२)

"............प्रकृत मन्त्र के अन्तिम चरण में एक ऐसी बात कही है, जो सर्वथा क्रांतिकारी है। यदि संसार आज उस पर आचरण करे, तो सारे दुःख दूर हो जायें। राजा को चुनकर प्रजा कहती है—**'ततो न उग्रो विभजा वसूनि'**=तू तेजस्वी होकर हमारे लिये धन का विभाग कर। यह वचन वैयक्तिक संपत्ति के स्थान में सामाजिक या राष्ट्रीय संपत्ति का समर्थन कर रहा है। जब संपत्ति किसी एक व्यक्ति की न होकर समूचे राष्ट्र की मानी जाये, तभी राजा से उस संपत्ति के विभाजन की बात कही जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि राजा देखे कि उसके राज्य में कोई भूखा तो नहीं, नंगा तो नहीं। खानपान पहरान तथा ज्ञान का सबके लिए विधान तथा सामान होना चाहिये।

स्वामी वेदानन्द तीर्थ विरचित
स्वाध्याय संदोह से मंत्र २१४

युवा आक्रोश चाहिए

जिस समाज में अन्नदाता किसान का बेटा भूखेपेट सोता हो, जिस समाज में लाखों थान कपड़ा-बुनने वाले के परिवार में मां बहनों के तन पर लाज ढकने को भी कपड़ा मुय्यसर न हो पाये, जिस समाज में औरों के लिए कई कई मंजिल की एयर कन्डीसण्ड कोठियां खड़ी करने वाला मजदूर सारी जिन्दगी की मेहनत के बाद भी अपना सिर छिपाने के लिए एक झोपड़ी भी न जुटा पाये, उस समाज को बदल डालने के लिए नव-जवानों के दिल दिमाग में उमड़ता घुमड़ता युवा आक्रोश चाहिए !

जिस समाज में स्वयं परिश्रम न करने वाले और दूसरों के श्रम के शोषण पर पलने वाले खटमल रोज दावतें उड़ाते हों, दिन में तीन तीन बार कपडे बदलते हों और ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं में विलास करते हुए देश के गरीब की मजबूरी पर वीभत्स अट्टहास करते हों, उस समाज की ईंट से ईंट बजाने के लिए युवा धमनियों में खौलता हुआ खून चाहिए !

जिस देश में समाजवाद का दम भरने वाली सत्तारूढ़ शक्तियां पूंजी-वाद की निकृष्ट दलाली करती हों—अपनी संस्कृति, सभ्यता और राष्ट्रीयता का मजाक उड़ाकर विदेशी ताकतों के हाथों देश का भविष्य गिरवी रखने की साजिश करती हों और प्रजातान्त्रिक मूल्यों का गला घोंट कर अपनी मेहनतकश जनता को लाठियों से पीटती हों, अश्रुगैस से रुलाती हों और गोलियों से भूनती हों—ऐसी सड़ी गली सत्ता और व्यवस्था के खिलाफ बगावत करने वाले क्रान्तिवीरों के दिल में धधकती हुई ज्वालामुखी चाहिए !

प्रसन्नता की बात है कि २५ साल की लम्बी प्रतीक्षा के बाद अब धीरे धीरे आक्रोश के बादल उमड़ने-घुमड़ने लगे हैं, रह रह कर धमनियों का खून खौलने लगा है और कहीं कहीं असंतोष और विद्रोह की आग ज्वालामुखी बन फूटने भी लगी है।

इस भड़क और विद्रोह को क्रांति की मंजिल तक पहुँचाने के लिए—वर्तमान की सड़ीगली दूषित व्यवस्था को तोड़कर एक नई व्यवस्था खड़ी करने के लिए यह आवश्यक है कि युवा पीढ़ी के मन मस्तिष्क में नव निर्माण का एक विशद प्रारूप हो। यह प्रारूप किसी व्यक्ति विशेष के मन की उपज न तो हो सकती है, न होनी चाहिए। इस धरती के कोटि-कोटि मानसपुत्रों के अन्तस्तल में छिपी हुई आग ही इस नवनिर्माण का प्रारूप बनायेगी पर इतना स्पष्ट है कि क्रान्ति का प्रारूप एवं स्वरूप इस देश की माटी से ही पैदा होगा—इसकी संस्कृति और सभ्यता से ही अनुप्राणित होगा—इसके तेजस्वी वर्चस्वी युगप्रवर्तकों, ऋषि मुनियों एवं बागी फ़कीरों से ही प्रेरित होगा और इसके सत्य-सनातन-शाश्वत जीवन आदर्शों का ही प्रतिनिधित्व करेगा। क्रांति का स्थायित्व एवं महत्व इसी में निहित होगा कि इसकी बुनियाद इस देश की वीर प्रसवनी धरती में स्थापित इस देश की बलिदानी परम्परा से अभिषिक्त इस देश की ओजस्वी भाषा में उद्घोषित इस देश की जनता की क्रान्ति हो।

—

बाहर से उधार लिए प्रेरणा के स्त्रोत, उधार लिए नेता और प्रणेता, उधार ली गई भाषा और उधार लिए हथियारों से बाहर वालों की दलाली तो की जा सकती है—अपने देश में क्रांति नहीं लाई जा सकती।

भारत की धरती पर समाजवादी क्रांति का मार्ग निरे भौतिकवादी एवं भोगवादी सिद्धांत एवं जीवन दर्शन तक सीमित नहीं रहेगा वरन् आध्यात्मवाद के चरम आदर्शों से मण्डित एवं त्यागवाद की गरिमा से उद्भासित एक मौलिक एवं सर्वाङ्गीण सतत् क्रांति का मार्ग होगा।

यहां हमें इस बात के लिए बहुत सतर्क एवं आरम्भ से ही ध्येयनिष्ठ होना पड़ेगा कि हमारी क्रांति मनुष्य को ईकाई मानकर होगी और इस ईकाई को किसी भी कीमत पर नष्ट नहीं होने दिया जायगा। रोटी, कपड़ा, मकान आदि भौतिक आवश्यकताओं की खोज में हमें विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता खोकर नहीं बैठना है अपितु चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासन की मानवीय प्रवृत्ति को सर्वसाधारण में प्रतिष्ठित करना है। इसी तरह राजतन्त्र की आवश्यकता एवं अनिवार्यता को स्वीकारते हुए भी राज्य की सत्ता को क्रमशः गौण करते हुए स्वायत्त-ग्राम-गणराज्य की ओर अग्रसर होना है। उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण अपरिहार्य होते हुए भी आर्थिक एवं राजनैतिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के दुष्परिणामों से हमें अपनी व्यवस्था को बचाना है। इसी तरह साधन और साध्य में साध्य की पवित्रता को प्राथमिकता देते हुए साधनों को भी यथाशक्ति पवित्र रखना है और इसी तरह हिंसा एवं अहिंसा के विकल्प में हमें अहिंसा का मार्ग यह मानकर ग्रहण करना है कि बड़ी हिंसा को रोकने के लिए की गई छोटी हिंसा वास्तव में अहिंसा है।

आज से १७ वर्ष पूर्व १७ वर्ष की आयु में मैं कलकत्ते में स्व० आचार्य रमाकान्त जी के सम्पर्क में आया और उनकी महती कृपा से मैं आर्यसमाज के आन्दोलन में दीक्षित होता चला गया। स्वामी समर्पणानंद जी ने मुझे महर्षि दयानन्द की सामाजिक, आर्थिक विचारधारा से अवगत कराया और वेदों को आज के परिप्रेक्ष्य में पढ़ने और समझने का रास्ता दिखाया। पर वैदिक समाजवाद की मान्यताओं एवं परिकल्पनाओं की ओर मुझे बरबस खींचकर ले जाने का श्रेय मेरे उन हजारों शोषित एवं दलित भाइयों को है जिनके बीच में पिछले ४ वर्षों से सन्यस्त होकर कार्य कर रहा हूँ। कलकत्ता विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र की ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर और ५ वर्ष इसी विभाग में प्राध्यापन करके भी जिन मान्यताओं को मैं समझ नहीं पाया था उन्हें जब मैं समाज की खुली

पुस्तक में किसान के साथ खेत की मेंड़ पर और मजदूर की झोपड़ी में बैठकर पढ़ता गया तो साफ साफ समझ में आने लगी। इस तरह मेरी ज्ञानकारी मनोगत की अपेक्षा वस्तुगत तथा परिमार्जित की अपेक्षा ठेठ अधिक है। मान्यतायें बदला करती हैं और मुझे तो मेरे प्रवर्तक से एक विशेष बात विरासत में मिली है कि "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" इसलिए कल का सत्य क्या होगा मैं कह नहीं सकता पर इतना निश्चित है कि आगे के पृष्ठों में मैंने जो कुछ लिखा है वह मेरा आज का सत्य है—ऐसा सत्य जिसकी रक्षा के लिए मैं बड़ा से बड़ा उत्सर्ग करके अपने को धन्य समझूँगा। इन्हीं मान्यताओं की स्थापना के लिए मेरा जीवन समर्पित है। आपके हाथों में यह पुस्तक राजधर्म पाक्षिक में समय समय पर प्रकाशित मेरे सम्पादकीय लेखों का संकलन है। अपने साथियों के आग्रह पर मैं इन्हें पुस्तक रूप दे रहा हूँ पर अभी यह चिन्तन-सरणि काफी अधूरी है–इसे पूरा करने की जिम्मेदारी मैं अपने सुहृद पाठकों पर छोड़ता हूँ।

मेरी तो अपनी दक्षिणा यही है कि इस पुस्तक को पढ़ते हुए आज की विषमता और शोषण के विरुद्ध आपकी आंखों में यदि एक क्षण के लिए भी खून उतर आये, दांत पिस उठें और मुट्ठियां अपने आप भिंच जाय तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

राजधर्म कार्यालय–रोहतक **अग्निवेश**

१५ मार्च १९७४

उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज के छठवें नियम में यह स्पष्ट घोषणा की कि– **"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति करना ।"** किसी भी प्रकार की संकीर्णता अथवा साम्प्रदायिकता, जातीयता अथवा कृत्रिम देशभक्ति का लेशमात्र भी न रखते हुए मानवमात्र के लिए इतना उदारता पूर्ण तथा इतना सर्वाङ्गीण उद्देश्य शायद ही किसी अन्य संस्था के संस्थापक ने घोषित किया हो। शारीरिक उन्नति से महर्षि का अभिप्राय स्पष्ट रूप से आर्थिक एवं भौतिक उन्नति है, आत्मिक उन्नति का अभिप्राय आध्यात्मिक उन्नति तथा सामाजिक उन्नति से अभिप्राय राष्ट्रीय एवं राजनैतिक उन्नति है । ये उन्नतियां परस्पर आश्रित होते हुए भी मुख्य रूप से तीन विचारधाराओं का सुन्दर समन्वय करती हैं और वे हैं–आर्थिक उन्नति के लिए **समाजवाद**, आत्मिक उन्नति के लिए **आध्यात्मवाद** एवं राष्ट्रीय उन्नति के लिए **राष्ट्रवाद** ।

शारीरिक उन्नति के लिए रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, मकान चाहिए और साथ साथ शिक्षा और चिकित्सा चाहिए । ये वे बुनियादी जरूरतें हैं जिनके बिना दुनियां का कोई भी नागरिक जीवित नहीं रह सकता उसकें उन्नति करने की तो बात ही अलग है । आत्मिक और सामाजिक उन्नति से पहले शारीरिक उन्नति को महत्व दिया जाना ही इस बात का द्योतक है कि रोटी का सवाल इन्सान के अस्तित्व के सवाल से जुड़ा है । जब अस्तित्व ही नहीं रहेगा तो उन्नति क्या करेगा ?

सवाल उठता है कि अस्तित्व का उद्देश्य क्या है ? निरा अस्तित्व अपने आप में आवश्यक होते हुए भी महत्त्वपूर्ण नहीं है यदि इसका कोई उद्देश्य न हो । जीने के लिए रोटी जरूरी है पर जीना किसके लिए है ? भौतिकवादी (विशेषकर द्वंद्वात्मक भौतिकवादी) यहां आकर निरुत्तर हो जाता है पर यहीं वैदिक त्रैतवाद का प्रतिपादन करने वाले महर्षि की मौलिकता प्रकट होती है और उत्तर मिलता है कि जीना आनन्द के लिए है । जब जीवन का उद्देश्य क्षणिक आनन्द न होकर परमानन्द की

प्राप्ति हो जाता है तब उस मंजिल को तय करने के लिए इन्सान भौतिक उन्नति के साथ साथ आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग का पथिक बन जाता है।

पर इन दोनों प्रकार की उन्नतियां तभी संभव है जब मनुष्यों का संगठन हो—विशाल राजनैतिक संगठन, सुदृढ़ सामाजिक संगठन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन। इस संगठन की भावना को बद्धमूल करने के लिए सामाजिक गुणों का विकास अपरिहार्य है। इसलिए शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति के साथ सामाजिक उन्नति जरूरी है।

उन्नति की इस सुन्दरतम सर्वाङ्गीण परिभाषा के पश्चात् महर्षि अगले कदम पर ही इस उन्नति को प्राप्त करने के तरीके पर आ जाते हैं। यहां उनके सामने अनादि काल से चले आ रहे दो प्रमुख वाद खड़े हो जाते हैं-एक वाद है स्वार्थवाद अथवा व्यक्तिवाद अथवा पूंजीवाद, दूसरा वाद है परमार्थवाद अथवा समष्टिवाद अथवा समाजवाद।

पहला वाद कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही उन्नति में जुटना चाहिए और इस तरह व्यक्ति २ की उन्नति से सारे समाज और राष्ट्र की उन्नति संभव हो सकेगी।

दूसरा वाद कहता है कि नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक दूसरे तीसरे और सारे समाज की उन्नति में जुटना चाहिए और इस तरह सारे समाज को उन्नति होने से प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति अवश्यम्भावी है।

महर्षि दयानन्द बड़ी गंभीरता और दूरदर्शिता का परिचय देते हुए पूंजीवाद के रास्ते को ठुकरा कर समाजवाद का रास्ता अपनाते हैं और आर्यसमाज के नौवें नियम में स्पष्ट शब्दों में घोषणा करते हैं कि **"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"**

और इतना ही नहीं समाज के सामूहिक विकास के नियमों के पालन कराने में यदि व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना पड़ता है तो उसे भी स्वीकार करते हुए महर्षि आर्यसमाज के दसवें नियम में यह घोषणा करते हैं कि **"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।"**

महर्षि दयानन्द के उपरोक्त प्रखर वैदिक समाजवादी विचारों से प्रेरणा लेकर अगस्त १९७१ में आर्य सभा ने अपने प्रथम प्रतिनिधि सम्मेलन में निम्नलिखित आशय का प्रस्ताव पारित किया थाः—

'यह सदन राष्ट्र के वर्तमान पूँजीवादी ढांचे के प्रति असंतोष प्रकट करता है जिसके अन्तर्गत संविधान में व्यक्ति को दी गई मौलिक अधिकारों की गारण्टी व्यावहारिक रूप मे लगभग अर्थहीन हो गई है। व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए गिने चुने पूंजीपतियों द्वारा जनता का शोषण किया जाता है। आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए घूसखोरी, भ्रष्टाचार व अश्लीलता के प्रचार व प्रसार द्वारा राष्ट्र का नैतिक व चारित्रिक पतन तीव्रगति से योजनाबद्ध रूप में किया जा रहा है।'

"सदन प्रस्ताव रखता है कि समाज से गरीबी, आर्थिक शोषण, अन्याय, भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता समाप्त करने के लिए हमें वैदिक आदर्शों पर चलकर एक ऐसे आर्यराष्ट्र का निर्माण करने के लिए सभी सम्भव उपायों से संघर्ष करना होगा जिसमें राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की शिक्षा-स्वास्थ्य-भोजन-वस्त्र-निवास-सुरक्षा-न्याय आदि सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायित्व राष्ट्र लेकर उसे उसके सर्वोच्च आध्यात्मिक विकास का अवसर प्रदान करे। इस महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि आर्य सभा राज्यसत्ता प्राप्त करके महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार सम्पत्ति के जन्माधिकारवाद को समाप्त कर गुणकर्मस्वभावानुसार अधिकार दे और उपर्युक्त बातों की पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले।"

उपरोक्त आर्थिक प्रस्ताव में आर्य सभा की अर्थनीति साररूप में कही गई है। इसमें सम्पत्ति शब्द का व्यवहार अर्थशास्त्र की भाषा में पूँजी अर्थात् उत्पादन के साधनों के लिए किया गया है। उत्पादनों के साधनों पर जब जन्माधिकार समाप्त हो जाता है और योग्यतानुसार अधिकार प्रदान किया जाता है तब उस साधन में निहित व्यक्ति का वैय्यक्तिक स्वामित्व समाप्त हो जाता है और वह समाज अथवा राष्ट्र के नियन्त्रण में आ जाता है। आधुनिक भाषा में कहा जाय तो उसका राष्ट्रीयकरण हो जाता है। उस राष्ट्रीयकृत उत्पादन के साधन का प्रबन्ध राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था सरकार के मातहत होता है। सरकार

ऐसे साधन का प्रबन्ध किसी व्यक्ति को अथवा व्यक्तियों के समूह को सरकारी अथवा सामूहिक तरीके पर सौंप सकती है।

जन्माधिकार अथवा व्यक्तिगत स्वामित्व (Individual's Right of Ownership) समाप्त होने का यही अर्थ है कि उस उत्पादन के साधन (Means of Production) को वह व्यक्ति खरीद-बेच (Sale or Purchase) नहीं कर सकता उसे गिरवी (Mortgage) नहीं रख सकता और उसे अपने बाद अपनी संतान को वसीयत (Will out) नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में किसी भी उत्पादन के साधन (खेत, फैक्टरी, खदान आदि) का स्वामित्व रुपये पैसे से अथवा किसी पारिवारिक सम्बंध के आधार पर परिवर्तन नहीं हो सकता–उसका जब भी स्वामित्व परिवर्तन होगा तो योग्यता (गुण, कर्म, स्वभाव) के आधार पर होगा और चूंकि योग्यता का निर्धारण राजनियम के अंतर्गत होगा इसलिए परोक्ष रूप से उस साधन पर स्वामित्व अथवा वास्तविक अधिकार राज्य का ही माना जाएगा। ऐसे साधन के स्वामित्व परिवर्तन अथवा राज्य द्वारा अधिग्रहण में मुआवजे का (Compensation) का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी व्यवस्था में साधन के ऊपर योग्यता के आधार पर राज्य द्वारा नियुक्त व्यक्ति अथवा समुदाय को उस साधन का स्वामी कहने के बदले उस साधन का प्रबन्धक या ट्रस्टी कहना अधिक समीचीन होगा। राष्ट्र के सभी साधनों पर राष्ट्र का स्वामित्व और राष्ट्र के सभी नागरिक उन साधनों पर राष्ट्र की ओर से नियुक्त प्रबन्धक या ट्रस्टी-उन्हें उनकी सेवाओं के बदले व्यक्तिगत उपभोग के लिए उनकी योग्यता एवं आवश्यकता के अनुरूप पारिश्रमिक–यह है संक्षिप्त में आर्यराष्ट्र की आर्थिक रूपरेखा। इसमें व्यक्ति का किसी भी उत्पादन के साधन पर वैय्यक्तिक स्वामित्व का अधिकार न होते हुए भी अपने पारिश्रमिक से उसे अपने इच्छानुसार उपलब्ध उपभोग के साधनों द्वारा जीवन यापन की स्वतन्त्रता होगी–अपने कपड़े, अपने मकान, अपने अन्य सामान्य उपभोग के साधनों पर उसका व्यक्तिगत स्वामित्व स्वीकार किया जाएगा बशर्ते वह किसी भी प्रकार समाज के सामूहिक उत्थान में बाधक न बनें। इसी तरह वाणी और विचार, लेखनी आदि की पूरी सुविधा एवं स्वतंत्रता होगी।

प्रत्येक नागरिक को रोजगार का मौलिक अधिकार होगा और बेरो-

जगार व्यक्ति को जीवनयापन की न्यूनतम सुविधायें अवश्य उपलब्ध कराई जायेंगी। शिक्षा पूर्ण निःशुल्क एवं कुछ कक्षाओं तक अनिवार्य होगी। शिक्षण काल में विद्यार्थी के भोजन, निवास, वस्त्र पुस्तकें आदि सम्पूर्ण व्यय का उत्तरदायित्व राज्य वहन करेगा। शिक्षण काल मनुष्य के योग्यता के विकास का काल होता है और इस काल में प्रत्येक विद्यार्थी को सच्चे अर्थ में उन्नति के समान अवसर प्रदान करना राज्य का प्रमुख लक्ष्य होगा। महर्षि दयानन्द के शब्दों में चाहे राजकुमार हो अथवा दरिद्र की संतान सब को तुल्य वस्त्र खानपान और आसन दिए जायेंगे। इसी प्रकार चिकित्सा का भी पूर्ण राष्ट्रीयकरण करके चिकित्सा सेवा सर्वथा निःशुल्क एवं सर्वसुलभ की जायगी। न्याय के क्षेत्र में पूंजी के महत्व को नष्ट करने की दिशा में नागरिकों को निःशुल्क न्याय की व्यवस्था की जायगी और डाक्टरों की तरह वकीलों के भी प्राइवेट प्रैक्टिस पर पूर्ण प्रतिबंध होगा।

देश में सभी के काम के घण्टे लगभग समान होंगे और वेतन प्रतिमान इस तरह निश्चित किए जायेंगे कि एक ओर न्यूनतम और अधिकतम वेतन में १ और १० से अधिक अनुपात न हो और दूसरी ओर किसी को इतना अधिक न मिले कि वह फिजूल के प्रदर्शन अथवा संचय में प्रवृत हो सके। बुढ़ापे की आवश्यकताओं की चिन्ता से सब को निश्चिन्त किया जाएगा। जीवन के प्रथम २०-२५ वर्ष अपने बौद्धिक एवं शारीरिक विकास में लगाकर तथा उसके बाद के २५-३० वर्ष कठोर परिश्रम द्वारा राष्ट्र के विकास में लगाकर प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाकी के जीवन में निश्चिन्त होकर परलोक सेवा में प्रवृत्त होने का अधिकार है। उसे यह अधिकार प्रदान करना प्रत्येक कृतज्ञ राष्ट्र का कर्त्तव्य है।

उपरोक्त आर्थिक व्यवस्था ही ऐसी आदर्श व्यवस्था है जिस में व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्तियों पर प्रभावकारी नियन्त्रण रखते हुए उसके सांसारिक एवं आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकेगा। ऐसी व्यवस्था के लागू होने पर ही समाज से भ्रष्टाचार का दानव समाप्त होगा और एक शोषण रहित, विषमता रहित एवं अन्याय रहित वातावरण में मानव जीवन अपनी समग्रता को प्राप्त कर सकेगा। इसके विपरीत वर्तमान की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पैसे का राज्य है। पैसे

से ही रोटी, कपड़ा और मकान मिलता है और पैसे पर ही आदमी का ईमान बिकता है। चाँदी के टुकड़ों के सहारे मिलने वाला न्याय, अन्याय में ही अधिक सार्थक सिद्ध होता है। रुपयों के भाव से चिकित्सा करने वाले डाक्टर समाज से स्वास्थ्य का गला घोंटकर रख देते हैं। राज्यशक्ति की प्राप्ति अथवा हस्तान्तरण (चुनावों) में रुपया अपना महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करता है और पूंजी के बल पर गद्दी पर बैठे सत्ताधारी पूंजीवाद के पृष्ठपोषण में अपनी राजनैतिक सूझबूझ का परिचय देते हैं। पूंजी की इस महत्ता को देखकर पूंजी प्राप्ति की होड़ लगी रहती है जिससे आपाधापी, लूट-खसोट चोरी-बेईमानी, रिश्वतखोरी, शोषण और अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुंचता जाता है और धनी निर्धन सभी के जीवन में एक अशान्ति व्याप्त हो जाती है जिसमें जीवन का सौंदर्य समाप्त हो जाता है। जब समाज में शिक्षा, न्याय, चिकित्सा, सुरक्षा और सत्ता का आधार एकमात्र धन रह जाता है तो देश का बहुसंख्यक निर्धन समाज धनिकों की गुलामी में सिसक-सिसक कर दम तोड़ देता है। मनुष्य जब पूंजीवाद की इस अंधी दौड़ में व्यक्तिवाद और स्वार्थ की पराकाष्ठा पर पहुंचने लगता है तो धन की प्राप्ति के पीछे वह जीवन के अन्य सभी आदर्शों और मूल्यों को ताक पर रख देता है और सत्य अहिंसा आदि के सम्बन्ध में हृदय में उठने वाले नैसर्गिक भावनाओं को वह कदम-कदम पर कुचलता हुआ मानव के चोले में दानव बन जाता है।

हमारे सामने यह स्पष्ट चुनौती है कि यदि हम अपने देश की आजादी को देश की ५५ करोड़ जनता के लिए सार्थक करना और अपने वैदिक धर्म एवं जीवन मूल्यों के आधार पर एक आदर्श समाज की रचना करना चाहते हैं तो हमें इन दानवीय प्रवृत्तियों का संहार करके मानवीय तथा दैवी प्रवृत्तियों को उभारना होगा। इसके लिए एक ओर जहां देश की शिक्षा प्रणाली, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन, समाचार पत्र तथा अन्यान्य विचार-प्रसारण के साधनों के सदुपयोग द्वारा राष्ट्र के एक-एक बालक और वृद्ध में वैदिक समाजवाद की नई चेतना का मन्त्र फूंक कर उसे निस्वार्थी और परोपकारी बनाना है वहां दूसरी ओर दानवीय प्रवृत्तियों की जननी उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व को भी समाप्त करना है। जब तक यह कार्य सम्पादित नहीं

होता तब तक चाहे कितना ही समाजवाद का नारा लगाते रहो—पूंजीवाद का रक्तबीज बार-बार अपने विकराल बीभत्स रूप में पैदा होता रहेगा। व्यक्तिगत स्वामित्व इस पैशाचिक प्रवृत्ति को अमरत्व प्रदान करता रहेगा। इसका इलाज सिर्फ यही है कि उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण रूपी काली का खप्पर आगे बढ़कर इस पूंजीवाद को जड़ से समाप्त कर दे।

जब तक यह महान कार्य नहीं हो जाता तब तक हमें आजादी की खुशियां मनाने का कोई अधिकार नहीं। आज जबकि देश की आधी से अधिक जनता पेट की भूख से छटपटा रही है, उभरी हुई पसलियों और धँसी हुई आंखों से झांकते हुए नरकंकाल के शरीर की लाज ढंकने के लिए भी कपड़ा मुय्यसर नहीं हो रहा है, ठिठुरती सर्दी में फुटपाथ और खुले आसमान के नीचे मानवता दमतोड़ रही है, १० करोड़ से अधिक बेरोजगार दो जून रोटी के सहारे के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं और समाजवाद की खाल ओढ़े पूंजीवादी भेड़िये जनता का खून चूसे चले जा रहे हैं, देश के आजादी की रजत जयन्ती की खुशियां मनाना इस देश में पूंजीवाद की जड़ें गहरी करने वाले सरमायेदारों के पिट्ठू कांग्रेसी दलालों को शोभा दे सकता है किसी सच्चे देश भक्त और वैदिक धर्मी को नहीं। इसलिए अब आगे असली क्रांति की लड़ाई को लड़ना है तो देश के करोड़ों गरीबों, शोषितों, दलितों और सदियों से उत्पीड़ित वर्ग के लोगों को एक ओ३म् के केसरिया झण्डे के नीचे इकट्ठे होना होगा और उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करने का ठोस कार्यक्रम देना होगा। इस महान संघर्ष में एक ओर मेहनतकश किसान, मजदूर, बुद्धिजीवी और पसीने की कमाई में विश्वास रखने वाले वो तमाम लोग होंगे जिन्हें वेद आर्य की सज्ञा देता है और दूसरी ओर दूसरों का खून चूसकर पल रहे खटमल और पिस्सू की नसल के पूंजीवादी शोषक और उनके पृष्ठपोषक सत्ताधारी लोग होंगे जिन्हें वेद अनार्य और दस्यु की संज्ञा देता है। वेद का स्पष्ट आदेश है :

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अराव्णः

"दुनियाँ के ईमानदार मेहनतकश लोगों! उठो आलस्य एवं प्रमाद परित्याग कर राज्यरूपी ऐश्वर्य का विस्तार करते हुए तथा सारे विश्व को आर्य बनाते हुए शोषक जनों का संहार करो।"

इस आर्य और दस्यु के चिरकाल से चले आरहे वर्ग संघर्ष को अब एक निर्णायिक युद्ध का रूप देना होगा और सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है उनके आदिमूल परमेश्वर में अटूट निष्ठा के साथ श्रमिकों को [आर्यः ऋ गतौ=श्रमिक। दस्युः अकर्मादस्यु= शोषक (निरुक्त)] इस युद्ध में 'वयं जयेम्' हमारी निश्चित जीत होगी इस दृढ़ निश्चय के साथ भाग लेना होगा क्योंकि सब सत्य विद्याओं की पुस्तक वेद में परमात्मा की यह स्पष्ट घोषणा है :—

"अहम् भूमिमदाम् आर्याय" मैं यह धरती आर्यों को अर्थात् श्रमिकों को देता हूं। इसी लिए आर्य के जीवन में श्रम का अत्यधिक महत्व है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त उसका जीवन कठोर श्रम से युक्त चार आश्रमों में विभक्त होता है चाहे ब्रह्मचर्याश्रम में हो या गृहस्थाश्रम में या वानप्रस्थाश्रम में अथवा संन्यासाश्रम में श्रमिक के जीवन में श्रम ही एक ऐसी वस्तु है जो उसे शोषक से अलग करती है। आश्रम के बिना कोई भी व्यक्ति आर्य नहीं कहला सकता, वह दस्यु बन जाता है। जो श्रमिक है वही आर्य हैं, वही श्रेष्ठ है, वही सुर है और जो श्रमिक नहीं वह असुर है, डाकू है, अनार्य है।

इसलिए संघर्ष का बिगुल बजरहा है। दुनियां के श्रमिकों ! एक हो जाओ और शोषण के दीवार की ईंट से ईंट बजा दो। कल्याणी वाणी वेद का आदर्श अपने सामने रखो 'न वा उ देवाः क्षुधमिद् वधं ददुः' (ऋग्वेद १०-१२-७१) अर्थात् परमेश्वर ने यह नियम बनाया है कि किसी की मौत का कारण भूख न हो। पर इसके लिए वर्तमान व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा–और इतना बड़ा परिवर्तन बिना राज्य शक्ति के नहीं हो सकता। इसलिए वेद ऐसे शासक की व्यवस्था करता है :–

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः सवितारं नृचक्षसम्

(यजु० ३०।४)

"हम, मनुष्यों को ठीक परख सकने वाले तथा प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ और साथ ही विविध प्रकार के अन्य ज्ञानवर्धक साधन-सुविधाओं को सब में न्यायपूर्वक वितरण की व्यवस्था करने वाले राष्ट्रनायक का आह्वान करते हैं।"

राजशक्ति में इस महान परिवर्तन की प्रक्रिया क्या होगी ? क्या वर्तमान पांचसाला चुनाव प्रणाली से यह परिवर्तन संभव है ? पिछले पच्चीस वर्षों में हुए ५-६ चुनावों से तो यह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जा रहा है कि वर्तमान की चुनाव प्रणाली नाम से बेशक प्रजातान्त्रिक कहलाये पर वास्तविकता की दृष्टि से यह पूंजीतान्त्रिक बना हुआ है। जब तक इस प्रणाली में भी कोई ऐसा मूलभूत परिवर्तन नहीं होता जिससे चुनाव में पैसे का महत्व समाप्त किया जा सके तब तक इस प्रणाली में अधिक आस्था हमें नहीं रखनी चाहिए। पर इस प्रणाली का हमें वहीं तक उपयोग करना चाहिए जहां तक हमें अपनी विचारधारा के प्रचार का अवसर मिलता है। एक बार लोगों में वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति असन्तोष पैदा कर उन्हें वैदिक समाजवाद का विकल्प उनको अपनी भाषा और मुहावरों में समझाकर उन्हें क्रांति के अन्य उपायों के लिए भी तैयार किया जा सकना सुगम होगा।

परन्तु सबसे पहले तो यही जरूरी है कि हमारे सामने एक ऐसी सशक्त सर्वांगीण विचारधारा हो जिससे हम जनता के दिल और दिमाग को आंदोलित कर सकें—जिस विचारधारा की वैज्ञानिकता एवं व्यावहारिकता को समाज के सबसे पिछड़े और अनपढ़ व्यक्ति को भी समझा सकें और साथ ही उसे इस देश की सभ्यता, संस्कृति और अतीत के गौरवमय पृष्ठभूमि में ढालकर एक जनवादी क्रांति का आधार बना सकें।

इस लेख के द्वारा इस दिशा में एक विनम्र प्रयास किया गया है—इस विश्वास के साथ कि देश विदेश में बैठे हमारे सभी साथी मिल कर एक सामूहिक चिन्तन और विचारों के आदान-प्रदान द्वारा एक सुनिश्चित सिद्धांत एव योजना बना सकें जिसे क्रियान्वित करने में हम अपने तन-मन-धन की बाजी लगा दें। अपने उदार पाठकों से यह प्रार्थना है कि हमारी भावना को समझते हुए वे अपने अमूल्य सुझावों से हमें अनुगृहीत करें। साथ ही जिन्हें उपरोक्त विचारधारा से संबन्धित जो भी शंका हो—जो भी सवाल हो उन्हें हम तक निःसंकोच रूप से पहुंचाने की अवश्य कृपा करें ताकि उनके समाधान करने के प्रयास में हम सबका विचार मंथन सुगमता से हो और विचार-नवनीत को प्राप्त कर हम सभी लाभान्वित हो सकें।

महर्षि दयानन्द और वैदिक समाजवाद

महर्षि दयानन्द

प्रश्न—आप जिस वैदिक समाजवाद की चर्चा कर रहे हैं और उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण जरूरी बताकर शिक्षा आदि को निःशुल्क करने का उत्तरदायित्व राष्ट्र के ऊपर डाल रहे हैं—क्या इस सब का कोई सम्बन्ध महर्षि दयानन्द की विचारधारा के साथ है ? हमारी समझ में तो महर्षि दयानन्द को समाजवाद, अर्थ-व्यवस्था, राष्ट्रीयकरण आदि बातों से कुछ लेना देना नहीं था–ये बातें तो उन पर जबरदस्ती थोपी जा रही हैं। वे तो केवल यही चाहते थे कि लोग मूर्तिपूजा छोड़कर संध्या हवन करने लग जायं, मरे हुए माता पिता का श्राद्ध छोड़ कर जीवित पितरों की सेवा करने लगें और बाल-विवाह आदि कुरीतियां समाप्त कर संयम और सदाचार का जीवन-यापन करने लग जायं। वे एक समाज सुधारक थे और उनको समाजवादी क्रांति से कोई मतलब नहीं था—बल्कि उनके साहित्य के पढ़ने से तो ऐसा लगता है कि वे कुछ-कुछ पूंजीवादी थे और संपत्ति पर व्यक्ति का अधिकार मानते थे।

उत्तर—आपका ऐसा सोचना सरासर मिथ्याभ्रम है। महर्षि दयानन्द को महज एक समाज सुधारक समझना अपनी अल्पबुद्धि का परिचय देना है। महर्षि दयानन्द को समझने के लिए उनकी समग्रता को आत्मसात् करना होगा—महर्षि की विशेषता ही यह है कि वे एकांगी नहीं हैं। उनके असामयिक निधन के कारण मानवता उन के असीम ज्ञान भण्डार के बहुत बड़े हिस्से से वंचित रह गई पर जितना थोड़ा साहित्य उन्होंने लिख छोड़ा है वह उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का पूरा परिचय देता है। महर्षि दयानन्द केवल संध्या हवन ही नहीं चाहते थे। यदि उनके सारे साहित्य और उनके जीवन के अन्तिम वर्षों के कार्य का कोई गहराई से विश्लेषण करे तो ज्ञात होता है कि वे सबसे अधिक यह चाहते थे कि इस धरती पर आर्यों का (अर्थात् मेहनतकश ईमानदार श्रमिकों का) अखंड राज्य स्थापित हो और धरती पर बसने वाले सभी

दस्युओं (अर्थात् शोषकजनों) का संहार हो। अपने प्रस्तावित आर्य राज्य का विधायक कार्य-क्रम वे वैदिक वर्णाश्रम प्रणाली पर आधारित करना चाहते थे। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम कई समुल्लास उन्होंने इस विषय पर लिखे हैं। इस वैदिक वर्णाश्रम प्रणाली के अन्तर्गत जो बातें उन्होंने सूत्र रूप में बताई हैं वे पूर्णरूप से समाजवादी और राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हैं।

प्रश्न—**क्या आप इस संबन्ध में कोई उदाहरण दे सकते हैं ?**

उत्तर—अवश्य देखिए सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास के अंत में महर्षि दयानन्द मनुस्मृति का उद्धरण देकर कहते हैं :-"राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रख के विद्वान कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का व लड़की किसी के घर न रहने पावे किन्तु आचार्य कुल में रहें। जब तक समावर्तन का समय न आवे तब तक विवाह न होने पावे।" इस तरह हम देखते हैं कि महर्षि **अनिवार्य शिक्षा** (Compulsory Education) के तथा शिक्षा के क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप के समर्थक थे। समाजवाद का मूलसिद्धांत है—सबको उन्नति के समान अवसर प्रदान करना (To provide equal opportunities for development to all) इस दिशा में अनिवार्य शिक्षा एक महत्वपूर्ण कदम है पर इस के साथ यह भी जरूरी है कि विद्यार्थी के शिक्षणकाल का सम्पूर्ण व्यय राष्ट्र वहन करे और सभी विद्यार्थियों को बिना किसी भेदभाव के समान सुविधायें निःशुल्क प्राप्त हों। इस सम्बन्ध में निर्देश करते हुए महर्षि तीसरे समुल्लास के आरम्भ में कहते हैं कि-"(पाठशाला में) सबको तुल्य वस्त्र खानपान आसन दिए जायं चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की संतान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।" वर्तमान की पूंजीवादी व्यवस्था में हम देखते हैं कि अमीरों के बच्चे तो पब्लिक स्कूलों में या कानवेन्ट्स में जाते हैं, बाद में वे विदेशों में भी जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं और जीवन में उन्नति करते जाते हैं दूसरी तरफ गरीब मां बाप के बच्चे बचपन से ही अपने मां बाप के साथ मजदूरी करते हैं और यदि वे पढ़ने भी जाते हैं तो फीस, पुस्तक व्यय आदि के अभाव में उनकी पढ़ाई रुक जाती है, उनकी योग्यता कुण्ठित हो जाती

है और अपनी अविकसित प्रतिभा के कारण वे जीवन की दौड़ में अभिजात वर्ग के युवकों से पिछड़ जाते हैं। इस विषमता को मिटाने का यही रास्ता है कि सब बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क हो ताकि उनकी योग्ताओं के विकास का उन्हें समुचित अवसर मिल सके।

शिक्षा के बाद योग्यतानुसार रोजगार का प्रश्न आता है। महर्षि दयानन्द स्पष्ट रूप से यह व्यवस्था देते हैं कि विद्यार्थी के वर्ण अर्थात् उसके गुण कर्म स्वभाव पर आधारित योग्यता का निर्णय आचार्य करेंगे और सारी शिक्षा व्यवस्था पर विद्यार्यसभा का अनुशासन होगा। यह विद्यार्यसभा राजा (सभापति) के अन्तर्गत काम करने वाली तीन सभाओं (मंत्रिमण्डल) में से एक होगी। इस तरह योग्यता निर्धारण राजकीय व्यवस्था के अन्तर्गत होगा और योग्यता निश्चित हो जाने के बाद उनको अपनी अपनी योग्यतानुसार कार्य देना भी राज्य का उत्तरदायित्व होगा। ब्राह्मण का उत्तरदायित्व शिक्षा का प्रचार प्रसार, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का संचालन करना आदि, क्षत्रिय का रक्षा प्रशासन एवं कार्य पालिका का संचालन करना तथा वैश्य का उत्पादन वितरण आदि का संचालन करना है। सर्वथा अयोग्य व्यक्ति शूद्र के रूप में सामान्य सेवा का कार्य करें। लेकिन ब्राह्मण के ऊपर शिक्षा आदि का दायित्व, क्षत्रिय पर रक्षा आदि का दायित्व और वैश्य पर उत्पादन आदि का दायित्व डालकर ही राजा चुप नहीं बैठ सकता—हरेक को उसके दायित्य के अनुसार साधन और अधिकार जुटाने भी राजा के कर्त्तव्य है क्योंकि बिना शिक्षणालय, पुस्तकालय, न्यायालय आदि साधनों के ब्राह्मण अपनी शिक्षा, न्याय आदि की जिम्मेदारी नहीं निभा सकता–इसी तरह बिना अस्त्र-शस्त्र और प्रशासन के साधनों को प्राप्त किए क्षत्रिय रक्षा और व्यवस्था आदि का उत्तरदायित्व नहीं संभाल सकते और वैश्य भी बिना उत्पादन के साधनों के कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकते।

इसलिए महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में विवाह के लक्षण बताने से पहले निर्देश करते हैं कि "जिस जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस उस वर्ण के अधिकार देना, ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं।"

पर सवाल पैदा होता है कि यह साधन और अधिकार जुटाने की जिम्मेदारी किसकी ? सबको अपने अपने अधिकारों में प्रवृत्त कराना और ऐसी व्यवस्था रखना किसका काम है ? तो इसका उत्तर दो चार पंक्तियों के बाद ही देते हुए महर्षि कहते हैं कि–"इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि का सभ्य जनों का काम है।"

इसी बात को यदि आज की भाषा में रखा जाय तो कहा जाएगा कि राष्ट्र के संविधान में नागरिकों के लिए योग्यतानुसार रोजगार का मौलिक अधिकार होना चाहिए (Fundamental Right to Employment) और सरकार का यह उत्तरदायित्व हो कि वह पहले देश में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा द्वारा सबको उन्नति के समान अवसर प्रदान करे और तत्पश्चात् सबको योग्यतानुसार रोजगार उपलब्ध कराये। वैदिक समाजवाद की इस मूलभूत मान्यता और महर्षि के आदर्श आर्य राज्य की रूपरेखा के बारे में हमें अधिक संदेह नहीं करना चाहिए।

प्रश्न—देखिए, जहां तक संदेह का सवाल है, हमें इस बारे में अब कोई संदेह नहीं रहा कि सरकार की ओर से शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क हो और सबको रोजगार का मौलिक अधिकार हो तथा सरकार सबको रोजगार के साधन मुहैय्या करे पर हमें अब भी यह संदेह है कि इन सारी बातों को मान लेने से यह कैसे सिद्ध हो गया कि उत्पादन के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय ?

उत्तर—यह भी कोई पूछने की बात हुई ? यदि सरकार शिक्षा के साधनों का राष्ट्रीयकरण न करे तो ब्राह्मणों को शिक्षा के साधन विद्यालय, पुस्तकालय आदि कहां से देगी ? यदि रक्षा के साधनों का राष्ट्रीयकरण न करे तो क्षत्रियों को अस्त्र-शस्त्र आदि कहां से देगी ? इसी तरह यदि सरकार उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण न करे तो वैश्य योग्यता के व्यक्तियों को उत्पादन के साधन खेत, खदान, दूकान आदि कहां से देगी ?

प्रश्न—मान लिया कि सरकार के पास होगा तभी वह किसी को दे सकेगी पर जब एक बार किसी को दे दिया तब वह साधन उसका हो गया। फिर आप यह कैसे कहते हो कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं रहेगा ?

उत्तर—किसी साधन पर किसी को कार्य करने का अधिकार देने का यह मतलब नहीं है कि उस साधन पर उसका व्यक्तिगत स्वामित्व दे दिया। उदाहरण के लिए–एक फौज के जवान को सरकार एक मशीनगन देती है-एक साधन के रूप में दुश्मन से लड़ने के लिए और देश की रक्षा करने के लिए। उस जवान का उस मशीनगन के प्रयोग का पूरा अधिकार है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मशीनगन उस जवान की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। इसी तरह एक वैज्ञानिक को सरकार एक प्रयोगशाला में अनुसंधान का अधिकार देती है पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह प्रयोगशाला वैज्ञानिक की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। इसीतरह एक उत्पादन की योग्यता रखने वाले किसान युवक को सरकार खेत या फार्म देती है–उस युवक को उस पर खेती करके उत्पादन करने का पूरा अधिकार है पर उस खेत पर उसका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं होगा। राष्ट्रीयकरण का अर्थ है कि जितने भो शिक्षा के रक्षा के, उत्पादन के, वितरण के साधन हैं उन पर किसी व्यक्ति विशेष का स्वामित्व न होकर सारे राष्ट्र का स्वामित्व होगा और राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधि के रूप में सरकार उन साधनों का राष्ट्रहित में संचालन करेगी। यही महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त विचारों का अभिप्राय है।

प्रश्न—महर्षि दयानन्द के विचारों का यह अभिप्राय कदापि नहीं है–आप जबरदस्ती खींचतान करके उनको समाजवादी बनाने की कोशिश कर रहे हैं। आजकल हर मजहब और सम्प्रदाय में एक फैशन चला हुआ है– अपने प्रवर्तक या अगुआ को समाजवादी सिद्ध करने का। आप भी उसी मनोवृत्ति के शिकार हैं। पर स्वामी दयानन्द सरस्वती आपकी पकड़ में नहीं आ सकते क्योंकि उन्होंने एक बार नहीं कई बार पिता द्वारा पुत्र को "दायभाग" की चर्चा की है और वैश्य के लिए कहा है कि वह इतना इतना ब्याज ले और राजा के लिए कहा है कि वह इतना इतना कर (टैक्स) ले। ये तीनों बातें यह सिद्ध करती हैं कि महर्षि दयानन्द समाजवादी कतई नहीं थे और व्यक्तिगत स्वामित्व मानते थे। दायभाग, ब्याज और टैक्स—ये तीनों पूँजीवादी व्यवस्था की देन है और चूंकि स्वामी दयानन्द इन तीनों को अपनी व्यवस्था में प्रश्रय देते हैं इसलिए यह सिद्ध हुआ कि वे समाजवादी नहीं बल्कि पूँजीवादी थे। आप इस बात को हरगिज नहीं काट सकते–यदि आपको विश्वास न हो तो मैं अभी सत्यार्थ प्रकाश खोल कर दिखा सकता हूँ कि वे इन तीनों बातों को मानते थे।

उत्तर—आपको यह कष्ट नहीं करना पड़ेगा। यह सर्वविदित है कि महर्षि इन तीनों बातों का उल्लेख करते हैं पर इस बात पर इतना उछलने का कोई कारण नहीं है। ये तीनों बातें पूँजीवादी व्यवस्था में तो होती हैं पर समाजवादी व्यवस्था में भी होती हैं। इन दोनों के बीच जो अन्तर है वह समझने की जरूरत है। पूँजीवादी व्यवस्था में दायभाग का अर्थ उत्पादन के साधनों और उपभोग के साधनों दोनों का उत्तराधिकार देना हुआ पर समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व न होने के कारण उसको दायभाग में देने का कोई सवाल ही नहीं उठता पर अपने वेतन से बचाकर यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन काल में कुछ उपभोग के साधन जमा कर लेता है और अपने पुत्र को वसीयत करना चाहता है तो राज्य उसमें कोई रुकावट नहीं डालता। पर याद रहे—उत्पादन के साधनों का वसीयत नहीं कर सकता, केवल अपने उपभोग के साधनों का कर सकता है और इस सीमित अर्थ में 'दायभाग' समाजवाद के विपरीत नही है। जैसे उदाहरण के लिए एक फौज का सिपाही (क्षत्रिय) अपनी कमाई में से—अपने पारिश्रमिक में से जो उपभोग के पदार्थ अपने बच्चों को देना चाहता है, दे सकता है पर अपनी मशीनगन, तोप या टैंक दायभाग में नहीं दे सकता। हां यदि उसका पुत्र भी फौज में भर्ती होकर उसी कार्य के लिये नियुक्त होगा तो राष्ट्र की ओर से उसे भी वे रक्षा के साधन उपलब्ध कराए जायेंगे। इसी तरह कोई प्रिंसिपल या आचार्य (ब्राह्मण) अपनी आय से बचे उपभोग के कुछ साधनों को दायभाग में दे सकता है पर अपने महाविद्यालय की बिल्डिंग और पुस्तकालय आदि को अपने बेटे के नाम वसीयत नही कर सकता। और इसी तरह कोई वैश्य (किसान या फैक्ट्री का मैनेजर) अपने पारिश्रमिक से संचित उपभोग के साधन (Means of Consumption) तो दायभाग में दे सकता है पर उत्पादन के साधन (Means of Production) खेत, खदान आदि नहीं दे सकता। पूँजीवादी व्यवस्था में चूंकि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार होता है इसलिये दायभाग में वह अपने खेत, खदान, फैक्ट्री आदि सभी वस्तुएं अपने पुत्रादि को दे सकता है—पर यह सरासर अन्याय है और इससे निकम्मे और नालायक लड़कों के हाथ संपत्ति आ जाती है और योग्य व्यक्ति साधनों से वचित रह जाते हैं। इस प्रकार का दायभाग समाज में शोषण और आर्थिक विष-

मता की जड़ें मजबूत करता है। इसलिये महर्षि इसके खिलाफ हैं-वे केवल उपभोग के साधनों के दायभाग की चर्चा करते हैं।

प्रश्न—माफ कीजिएगा—आप फिर खींचतान कर रहे हैं। स्वामी दयानन्द जी ने यह कहां लिखा है कि केवल उपभोग के साधनों का दायभाग हो। वे तो केवल दायभाग की चर्चा करते हैं हमारी समझ में वे उत्पादन के साधनों के दायभाग की चर्चा कर रहे हैं।

उत्तर—जब वे केवल 'दायभाग' की चर्चा करते हैं तो आप उत्पादन के ही साधन क्यों समझते हैं, शिक्षा और रक्षा के भी साधन समझिए और यदि आप दायभाग का यह अर्थ लेंगे तो गुणकर्मस्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था लड़खड़ा जाती है और उसकी जगह आज की सड़ी-गली दूषित जन्म पर आधारित जाति-पांति की व्यवस्था आ जाती है। इस बात को आप अच्छी तरह जानते हैं कि महर्षि इस जातिवाद के प्रबल विरोधी हैं और गुणकर्म स्वभाव नुसार वर्ण व्यवस्था का ही समथन करते हैं। इसमें यह कदापि आवश्यक नहीं कि ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण ही हो और क्षत्रिय की क्षत्रिय ही हो। उदाहरण के लिए यदि किसी ब्राह्मण की संतान शूद्र हो गई तो क्या वह ब्राह्मण अपने शिक्षा के साधन अपने शूद्र पुत्र को दायभाग में दे देगा? इसी तरह किसी वैश्य पिता का ब्राह्मण पुत्र हुआ तो क्या वह वैश्य अपनी फैक्टरी आदि उसे सौंप देगा? यदि ऐसा हुआ तो सारी व्यवस्था चौपट हो जाएगी और अराजकता फैल जाएगी। महर्षि दयानन्द ने कृषि, गोरक्षा वाणिज्य का अधिकार वैश्य को दिया है पर योग्यता के आधार पर, न कि जन्म के आधार पर।

यहां पर एक विशेष बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। महर्षि दयानन्द इसी संदर्भ में एक अत्यन्त क्रांतिकारी बात कहते हैं जिसे सुनकर बहुत से लोग चौंक उठते हैं। कहां तो दायभाग के नाम पर संपत्ति पर अधिकार जमाने की बात लोग करते हैं और कहां महर्षि दयानन्द संपत्ति के साथ-साथ संतति पर भी व्यक्ति का अधिकार समाप्त कर राष्ट्र का अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। माता पिता के रजवीर्य के संयोग से उत्पन्न संतान के ऊपर भी माता पिता का जन्मगत अधिकार ठुकराते हुए महर्षि एक सर्वथा नई बात कहते हैं। **चौथे समुल्लास में सवाल**

उठाते हैं "प्रश्न—जो किसी के एक ही पुत्र या पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मां बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए?" इस प्रश्न का युगान्तरकारी उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि "न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे। इसलिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी।" वर्ण अर्थात् योग्यता के अनुसार राज्य द्वारा माता पिता के सन्तानों का परिवर्तन राष्ट्रीयकरण के क्षेत्र में एक नई बात है—यहां स्पष्ट रूप से महर्षि दयानन्द संपत्ति के राष्ट्रीयकरण के साथ साथ संतति के भी राष्ट्रीयकरण का प्रतिपादन कर रहे हैं—इसकी पुष्टि एक अन्य प्रकरण से और हो जाती है। ५-६ वर्ष के बालक बालिका को गुरुकुल (अर्थात् विद्यालय) में भेजने के साथ ही उनका जन्मगत माता पिता से एक प्रकार सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। महर्षि कहते हैं कि—"उनके माता पिता अपने संतानों से व संतान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक दूसरे से कर सकें।" अब लीजिए ब्याज का सवाल। राष्ट्रीयकृत बैंकों में लोगों को अपने पारिश्रमिक से बचाकर जमा करवाने की पूरी सुविधा होगी और उनकी जमा पूंजी पर बैंक उन्हें ब्याज देंगे ताकि मितव्ययिता बरतने में उन्हें उत्साह हो। इसी तरह किसी को आवश्यकता होने पर वह बैंक से ब्याज पर ऋण भी ले सकेगा। इस प्रकार के बैंकों का संचालन जो व्यक्ति करेंगे वे वैश्य प्रवृत्ति के लोग होंगे। उनके ब्याज लेने न लेने से उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी तरह टैक्स का समाधान है। आज जिस प्रकार सेना का अधिकारी रक्षा के साधनों पर कोई स्वामित्व न रखता हुआ भी अपने वेतन से सरकार को टैक्स पटाता है, जिस तरह विश्वविद्यालय का एक प्रोफेसर शिक्षा के साधन पर कोई स्वामित्व न रखता हुआ सरकार को अपनी आय में से टैक्स देता है उसी तरह से खेत, खदान और कारखाने पर कार्य करने वाले व्यक्ति भी बिना उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के अपनी आय में से सरकार को कर दिया करेंगे।

इस तरह टैक्स, ब्याज और दायभाग आदि बातों की चर्चा होने के बावजूद भी वैदिक समाजवाद की मान्यताओं में कोई ढील नहीं आ

पाती। इनके अतिरिक्त यदि कहीं कोई छोटी मोटी बात इस ढंग की नजर आती भी हो जो महर्षि दयानन्द की मूल वैदिक वर्ण व्यवस्था की समाजवादी मान्यताओं से पूरी तरह मेल नहीं खा पाती तो विद्वानों को यह उचित है कि वे उन बातों का मूल विचारधारा के अन्तर्गत ही समाधान करें, न कि उन सामान्य और गौण बातों को लेकर मूल विचार को ही विवाद का विषय बना दें। यह ठीक है कि महर्षि अर्थ व्यवस्था की बहुत सो अन्य विस्तार की बातों की चर्चा नहीं करते। उसका प्रमुख कारण यही है कि उनका कार्यकाल बड़ा संक्षिप्त रहा और अपने इस संक्षिप्त जीवन काल में उन्हें केवल मात्र अर्थव्यवस्था पर ही चिन्तन करना नहीं था वरन् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का एक तर्कसम्मत वैज्ञानिक वेदानुकूल दृष्टिकोण प्रस्तुत करना था। इसलिए उन्होंने मौलिक प्रसंगों का उल्लेख करके दिशा निर्धारण का पर्याप्त कार्य किया है। अब आगे का विस्तार वैदिक ग्रन्थों में मंथन से सरलता से किया जा सकता है। महर्षि दयानंद की यह विशेषता है कि आर्यावर्तीय होने के बावजूद भी उनका दृष्टिकोण मानव मात्र के लिए है—इसीलिए उनके आर्य राज्य की कल्पना सारे भूमण्डल के लिए है। उनके राजा की कल्पना साम्राज्यवाद और सामतवाद के ठीक विपरीत विशुद्ध समाजवादी राज्य व्यवस्था की है। उनका राजा-जनता का चुना हुआ 'सभापति' है। पर इस चुने हुए राजा पर श्रमिक किसान मजदूर का आधिपत्य होगा—इसका स्पष्टीकरण करते हुए "राजधर्म" प्रकरण में महर्षि कहते हैं–'यह बात ठीक है कि राजाओं का राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है।" इस तरह महर्षि दयानन्द श्रमिकवर्ग के प्रभुत्व में स्थापित–वैदिक समाजवाद पर आधारित एक शोषण एवं विषमता रहित राज्य की स्थापना चाहते हैं। उनके इस पावन लक्ष्य को साकार करना हम सबका पुनीत कर्त्तव्य है। हमें उस युगपुरुष के चरणों में अपनी श्रद्धान्जलि और उससे भी आगे बढ़कर अपनी जीवनान्जलि अर्पित करते हुए 'आर्यराष्ट्र' के निर्माण में अपने आपको सर्वात्मना झोंक देना चाहिए यही हमारा चरम लक्ष्य और परम आदर्श होना चाहिए।

वैदिक समाजवाद और भ्रष्टाचार-१

आज हमारे देश में वर्तमान पूँजीवादी ढाँचे के अन्तर्गत भ्रष्टाचार का रोग समाज के हर अङ्ग में बुरी तरह व्याप्त हो गया है। वैसे भ्रष्टाचार का बड़ा व्यापक अर्थ भी हो सकता है पर आज के विषय के संदर्भ में हम भ्रष्टाचार का अर्थ रिश्वतखोरी, बेईमानी, मिलावट आदि से लेंगे। यह जानकारी प्राप्त करने के लिए किसी विशेष अध्ययन की आवश्यकता नहीं है कि आज हर सरकारी दफ्तर में बगैर घूस के कोई काम नहीं हो सकता—आज खाने की प्रायः प्रत्येक चीज में मिलावट है और हर व्यापारी चीजों के दाम में, अपने बही खाते में हेराफेरी और बेईमानी कर रहा है। यहां हम इस बात का ध्यान रखें कि यदि कहीं एकाध अपवाद हैं भी तो वे इस सामान्य नियम की ही पुष्टि करते हैं कि आज जीवन का हर पहलू भ्रष्टाचार से व्याप्त है। हरयाणा में पिछले दिनों इस बात का बड़ा शोर रहा कि २१० रु० वेतन के जे. बी. टी. अध्यापक की नौकरी के लिए नियमपूर्वक दो-दो हजार रु० के घूस लिए गए। यहां तक कि थानेदारों की नियुक्ति में सात सात हजार रु० की घूस चली। हमारे कार्यालय के पास ही सैनिक भरती केन्द्र है जहाँ सेना में भरती होने वाले जवानों से दलालों के माध्यम से ५००-५०० रु० की घूस आम बात है। और तो और स्कूल कालेज और गुरुकुल जैसे पवित्र सरस्वती केन्द्रों में भी अब घूसखोरी एवं बेइमानी पैर फैला चुकी है।

मिलावट तो अब जीवन का सामान्य नियम सा बन गया है। शराब में जहरीली वार्निश आदि की मिलावट के कारण हुई मौतों से लोग चौंकते हैं पर रोजमर्रा खाने पीने की चीजों में जो थोड़ा-थोड़ा जहर घोलकर हमें मारा जा रहा है उसकी ओर से हम बेखबर हैं। घी में चर्बी की मिलावट और खाने के मसालों में पशुओं के लीद की मिलावट से ज्यादा गिरावट क्या हो सकती है? पर कुछ लोग इससे भी आगे बढ़ गए हैं और भयंकर रोग से ग्रस्त मरीजों को दी जाने वाली दवाईयों तक में प्राणघातक मिलावट करके पैसा कमाने में नहीं हिचकिचाते।

टैक्स की चोरी और हेराफेरी की बातों का यह हाल है कि प्रायः हर दुकानदार दो खाते रखता है और जितना संभव हो सकता है—योजना बद्ध ढग से टैक्स की चोरी करता है। उधर कीमत के मामले में ग्राहकों का भी गला काटता है (माल छिपाकर कृत्रिम अभाव की सृष्टि करता है) और इधर कम तोल या माप कर अथवा और किसी हाथ की सफाई से अपने व्यापारिक कला का परिचय देता है। सरकार ने भी स्वीकार कर लिया है कि देश में काले धन की एक समानान्तर अर्थव्यवस्था चल रही है। कहा जाता है कि इस समय हमारे देश में पांच हजार करोड़ रु. का काला धन चल रहा है।

कुल मिलाकर निचोड़ यह निकलता है कि ईमानदारी से जीवन यापन करने की इच्छा और चेष्टा करने वाले नागरिक को भी इस व्यवस्था की मजबूरी में पड़कर भ्रष्टाचार का सहारा लेना पड़ता है। सवाल पैदा होता है कि आखिर इसका इलाज क्या है? इसका इलाज ढूँढने के लिए भारत सरकार ने भ्रष्टाचार निरोध आयोग का गठन किया जिसने साल दो साल लगाकर एक लम्बा चौड़ा पोथा रिपोर्ट के रूप में पेश कर दिया। इसी तरह की और भी कई कमेटियों का गठन हुआ और कई रिपोर्टें भी प्रकाशित हुई पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इतने ऊँचे-ऊँचे विद्वानों ने समस्या के मूल को पकड़ने के बदले पत्तों को पानी देने का इलाज ढूँढ कर निकाला और वो भी लागू नहीं किए जा सके क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में इस प्रकार के आयोग और उनकी सिफारिशें एक रस्म अदायगी से ज्यादा महत्व नहीं रखती, उनकी सिफारिशों को लागू कराने के बदले उन्हें दीमक भोज के लिए प्रस्तुत करने की पूँजीवादी व्यवस्था में विशेष क्षमता होती है।

कहा जाता है कि तत्कालीन गृह मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने एक बार देश के सामाजिक जीवन से भ्रष्टाचार को दो वर्ष के अन्दर पूर्णतया समाप्त करने की शपथ लेकर बड़ी मुस्तैदी से अपने निवास स्थान पर नित्यप्रति प्रातःकाल भ्रष्टाचार के विरुद्ध शिकायतें सुनकर उनका उसी समय निराकरण करने का आयोजन आरम्भ कर दिया। उनकी इस बहुचर्चित "सदाचार समिति" का दो महीने में ही बड़े उपहासास्पद तरीके से अन्त हो गया जब जनता को पता चला कि अपनी शिकायत मन्त्री महोदय के 'दीवाने आम' तक पहुंचाने के लिए

लोगों की इतनी भीड़ होने लगी है कि अपनी शिकायत की सुनवाई करने के लिए आपको पहले मन्त्री महोदय के चपरासी के हाथ चिकने करने पड़ेंगे।

इस तरह के प्रयासों की विफलता की कहानियां सुनकर और भ्रष्टाचार रूपी दैत्य की व्यापकता देखकर प्राय: बहुत से उत्साही और आदर्शवान युवक भी निराश हो जाते हैं और यह कह बैठते हैं कि इसका कोई इलाज नहीं हो सकता, भ्रष्टाचार हमेशा से रहा है और आगे भी रहेगा।

प्रश्न—फिर क्या आपकी समझ में इस भयंकर बीमारी का इलाज हो सकता है—क्या भ्रष्टाचार रूपी दैत्य को पूर्णरूपेण समाप्त किया जा सकता है? क्या आपके वैदिक समाजवाद में इस समस्या का कोई हल है?

उत्तर—जी हां। इलाज हो सकता है और बड़ा सरल इलाज हो सकता है। भ्रष्टाचार रूपी दैत्य को पूर्णरूपेण नहीं तो अधिकांश रूपेण तो खत्म निश्चित ही किया जा सकता है। जिस प्रकार एक नीरोग एवं पूर्ण स्वस्थ शरीर के अन्दर भी कुछ सामान्य रोग के कीटाणु बने रहते हैं; उसी तरह भ्रष्टाचार के कीटाणु भी वैदिक समाजवाद पर आधारित आर्यराष्ट्र में यदा कदा सिर उठा सकते हैं। पर उनका यह वर्तमान भयावह और व्यापक रूप नहीं रहेगा और छिट-पुट भ्रष्टाचार का तुरन्त प्रभावशाली इलाज भी संभव हो जाएगा। पर यह इलाज सतही स्तर का नहीं है। वैदिक समाजवाद सड़ी गली दीवार की लीपा पोती में विश्वास नहीं करता। इसके लिए दीवार की नीव को बदलना पड़ेगा। समस्या के मूल में जाकर उसकी जड़ का इलाज करना पड़ेगा—आजकल की तरह पत्तों को पानी देने से काम नहीं चलेगा।

प्रश्न—अच्छा आप यह बताइये कि आपका इलाज समय कितना लेगा? कहीं आप जनता का हृदय परिवर्तन करना शुरु कर दें और हजार साल इसी में लगा दें और इधर इलाज खत्म होने से पहले रोगी ही खत्म हो जाय? माफ कीजिएगा—यह शक इस लिए पैदा होता है कि—सुनते हैं आपके वेदों में लिखा है कि "जैसा खाय अन्न वैसा होय मन"। यदि ऐसी बात है तो फिर पहले तो आप १०० साल तक बड़े बड़े यज्ञ रचेंगे ताकि वायु मण्डल शुद्ध हो

और बादल नये किस्म के बनें। उनसे फिर नये किस्म की वर्षा होगी। फिर उस वर्षा से नये किस्म की शुद्ध फसल तैयार होगी। फिर उस शुद्ध फसल के खाने से लोगों के मन शुद्ध बनेंगे। और जब लोग शुद्ध मन के हो जायेंगे तो अपने आप भ्रष्टाचार, बेइमानी, मिलावट आदि समाप्त हो जायेंगे। कहीं यह तो नहीं है आपका इलाज? हम यज्ञ के या शुद्ध अन्न के खिलाफ नहीं हैं पर इस इलाज में तो हमारी कई पीढ़ी खप जायेंगी। और जब हम ही नहीं रहेंगे तो भ्रष्टाचार खत्म हुआ या नहीं—इसकी हमें सूचना कैसे मिलेगी? इसलिए कृपा करके इलाज ऐसा बतायें जो हम खुद अपनी जिन्दगी में उसका लाभ देखकर मरें। मजा तो तब आये जब इलाज ऐसा हो जैसे चट मंगनी पट ब्याह! और फिर आजकल तो साइन्स का जमाना है।

उत्तर—आपने इलाज तो सुना नहीं—पहले ही घबराने लगे। ध्यान रखिए धर्म का पहला लक्षण है धृति अर्थात् धैर्य। किसी भी महान कार्य को करने में धैर्य नही खोना चाहिए। और जब रोग आपका हजारों साल पुराना है तो एक दिन में इलाज कैसे सम्भव है? पर कोई बात नहीं–हमें आपकी भी बात पसन्द है कि इलाज जल्दी होना चाहिए–हमारी अपनी जिन्दगी में हो तो बहुत अच्छा रहेगा। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि वैदिक समाजवाद जो समाधान प्रस्तुत करता है वह इतना शीघ्र प्रभावकारी है कि लागू करने के महीने भर में ही इसका असर दीखने लगेगा और साल भर में सारे देश का माहौल ही बदला हुआ नजर आयेगा। कठिनाइयां आयेंगी, विरोध होगा, उथल-पुथल भी होगे पर यदि दृढ़ निश्चय और लक्ष्य के प्रति निष्ठा के साथ अग्रसर हुआ जाए तो दस वर्ष के अन्दर ही समाज के सारे पुराने सड़े गले मूल्य बदल जायेंगे, तथा नये और स्वस्थ मूल्य समाज में नई पीढ़ी को एक नई सभ्यता और सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित कर देंगे।

प्रश्न—इतनी बातें कहकर आपने हमारी उत्सुकता बढ़ा दी है—अब अधिक भूमिका न बांधते हुए जल्दी से यह बताइये कि वैदिक समाजवाद में भ्रष्टाचार रूपी रोग का क्या इलाज है?

उत्तर—लीजिए एकदम संक्षिप्त उत्तर—वैदिक समाजवाद के अनुसार इस भयंकर रोग का एक मात्र इलाज है—उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करके राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को प्रथम निःशुल्क शिक्षा द्वारा उन्नति के समान अवसर प्रदान करना और तदुपरांत उसे उसकी योग्यतानुसार रोजगार का मौलिक अधिकार देना–चिकित्सा

और न्याय भी निःशुल्क करके प्रत्येक नागरिक को उसके बुढ़ापे में जीवन यापन की मूलभूत आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त करना। इधर शिक्षा, दीक्षा, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन आदि विचार प्रसारण के प्रमुख साधनों के राष्ट्रीयकरण द्वारा उनके माध्यम से राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को समाजवाद एवं राष्ट्रवाद की विचारधारा से अभिभूत करना और उनमें आध्यात्मवाद के प्रति आकर्षण पैदा करना। इसके बावजूद भी भ्रष्टाचार और बेइमानी फैलाने वालों का अत्यन्त कठोर दण्ड विधान द्वारा दमन करना।

प्रश्न—आप घुमा फिरा कर इस राष्ट्रीयकरण पर ले आते हैं। हमारी समझ में तो यह राष्ट्रीयकरण की बीमारी भ्रष्टाचार से भी ज्यादा खतरनाक है। मुफ्त की पढ़ाई और मुफ्त की दवाई, मुफ्त का न्याय और मुफ्त की रोटी—सारा देश मुफ्तखोर हो जाएगा। कोई मेहनत नहीं करेगा। बल्कि उल्टे लूट मचेगी। सारी चीज सरकार की होगी तो सारे मिलके लूटेंगे। आज जैसे सरकारी कारखानों में लूट मची रहती है—हर साल करोड़ों का घाटा और बेईमानी! उत्पादन कम हो जाएगा। देश में भूखमरी बढ़ जायगी— बड़े सरकारी कर्मचारी लूटने में मस्त रहेंगे—देश में अराजकता फैल जायेगी और देश तबाह हो जायेगा। भ्रष्टाचार का इलाज करने चले थे इधर भ्रष्टाचार का रोग और भयंकर हो जायेगा—आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास वाली बात हो जाएगी। पता नहीं पढ़े लिखे समझदार लोगों का दिमाग भी क्यों घूम जाता है? आखिर भ्रष्टाचार दूर करने का राष्ट्रीयकरण से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—आप तो एकदम घबरा जाते हैं। जरा शान्ति और गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है। आप एक महा भयंकर रोग का जड़ से इलाज करना चाहते हैं। जब इलाज बताया जाता तो उतावले हो जाते हैं और सृष्टि के प्रलय तक की भविष्यवाणी कर बैठते हैं। जब आप समझते हैं कि किसी का दिमाग घूम गया है तो फिर उससे बातें करने का क्या लाभ?

प्रश्नकर्त्ता—माफ कीजिएगा—मैं कुछ आवेश में आगया था। मेरा मतलब यह सब नहीं था—मैं तो सिर्फ समझने की कोशिश कर रहा हूं कि आखिर भ्रष्टाचार का राष्ट्रीयकरण से क्या सम्बन्ध हो सकता है?

उत्तर—आइये अब मैं आपको रोग का निदान समझाऊँ।

आपने एक वाक्य में उपचार पूछा—सो मैंने बता दिया। पर इस उपचार की उपादेयता तभी समझ में आयेगी जब यह समझा जाय कि वास्तव में रोग क्या है—क्यों पैदा होता है—कैसे फैलता है आदि आदि। सबसे पहले तो यह समझना जरूरी है कि भ्रष्टाचार कोई जीवन का सिद्धांत नहीं है, कोई बालक जन्म से और स्वभाव से भ्रष्टाचारी बनकर पैदा नहीं होता। उसे समाज में व्याप्त व्यवस्था—या दुर्व्यवस्था ही भ्रष्टाचार का सहारा लेने के लिए मजबूर करती है।

प्रश्नकर्त्ता—क्या आप यह नहीं मानते कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है?

उत्तर—यह कहना भी गलत होगा कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है क्योंकि मनुष्य यदि स्वभाव से स्वार्थी होता तो मनुष्य एक सामाजिक प्राणी नहीं कहला सकता था। हां प्रत्येक मनुष्य में ऊँचा उठाने की, आगे बढ़ने की, तरक्की करने की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है इस प्रवृत्ति का होना अच्छा ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। तो मैं आपसे कह रहा था कि भ्रष्टाचार एक दुर्व्यवस्था की उपज है—इस दुर्व्यवस्था का नाम है पूँजीवाद। पूंजीवाद का मूलभूत सिद्धान्त है—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट रहना चाहिए और अपनी उन्नति में ही सबकी उन्नति समझनी चाहिए। अपनी-अपनी उन्नति की दिशा में जब मनुष्य प्रवृत्त होता है तब उसे दिखाई पड़ता है कि साधन तो सीमित हैं पर उन्हें प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बहुत हैं। तब उन सीमित साधनों के लिए परस्पर संघर्ष होता है—छीना झपटी होती है, लूट खसोट होती है—जो इस संघर्ष में ज्यादा छीन ले जाता है वह सफल और बाकी असफल हो जाते हैं। जीवन का एक दूसरा सिद्धांत उभरता है—योग्यतम की विजय (Survival of the fittest) पर यहां भी योग्यता का मापदण्ड मानवीय गुण नहीं होते पर पैसा होता है, पूँजी होती है। हर वस्तु का मूल्यांकन—जहां तक हो सके, पैसे से होता है। रोटी के लिए पैसा, कपड़े के लिए पैसा, मकान के लिए पैसा, बच्चों की पढ़ाई के लिए पैसा, बीमार पड़गए तो दवाई के लिए पैसा, झगड़ा हो गया तो न्याय प्राप्त करने के लिए पैसा—मंदिर में पैसा और मरघट में पैसा—सब जगह पूँजी और पैसे का बोलवाला हो जाता है। सारी योग्यता का मापदण्ड पैसा!

एक छोटा सा बालक जब दुनियां में आता है तो आने के साथ ही

उसे कदम-कदम पर पैसे की प्रभुसत्ता का कटु अनुभव होने लगता है। एक मजदूर का बेटा झोपड़ी में पड़ा हुआ, चिथड़ों में लिपटा हुआ, भूख लगने पर रोता है–चीखता है पर उसकी मां प्रसव के दूसरे दिन से ही पड़ोस में मालिक के घर में नौकरी करने गई हुई है—मालिक के राजा-बाबा के कपड़े धोने, उसकी टट्टी उठाने, उसे बाग में घुमाने और उसे भूख लगने से पहले चांदी के कटोरे में सोने के चम्मच से दूध पिलाने के लिए और दूध पिलाकर एयरकण्डीशण्ड कमरे में डनलप के गद्दे पर उसे थपकी देकर सुलाने के लिए उसे ४० रुपये महीने की नौकरी मिली हुई है। इतने बड़े घर में उसे नौकरी मिल गई—यह उसकी कितनी बड़ी खुश किस्मती है और उसकी मालकिन भी कितनी दयालु हैं कि हर साल वह अपनी एक दो पुरानी फटी साड़ी उसे दे देती है और जब कभी राजाबाबा कुछ जूठन छोड़ देता है तो वह उसे भी उसके बच्चे के लिए दे देती है।

इधर झोंपड़ी में पड़ा बालक जब रोते रोते थक जाता है तो अपने आंसुओं को चाट कर चुपचाप सो जाता है—उसी बिस्तर में टट्टी पेशाब हो जाता है–मक्खियां भिनभिनाने लगती हैं उसके मुंह के ऊपर।

हर साल कई लाख बच्चे जो गरीब की झोंपड़ी में मजदूर मां-बाप की खुशी बन कर आते हैं वे वर्ष दो वर्ष की उम्र से पहले अपने माता-पिता को रोता बिलखता छोड़कर हमेशा के लिए उनसे जुदा हो जाते हैं। मां-बाप भी इसे "भगवान की माया" समझकर चुपचाप आंसू बहा लेते हैं। जो कुछ बच्चे बच जाते हैं वे अपनी धँसी हुई आंखें, पिचके हुए गाल और उभरी हुई पसलियों के नरकंकाल के रूप में इस तथाकथित आजाद देश में अमीर के कुत्ते से भी बदतर जिन्दगी जीने के लिए मजबूर गुलामी और शोषण की चक्की में पिसते चले जाते हैं।

मजदूर का बेटा इस तरह जब जवान होकर जीवन से संघर्ष करने उतरता है तो उसे कदम-कदम पैसे के अभाव का कटु अनुभव होने लगता है। किसी तरह मां ने राजाबाबू के झूठे बर्तन मांज कर अपने बेटे को बी. ए. तक पढ़ा दिया पर अब आगे अंधेरा है। अच्छे नम्बरों में पास हुआ मजदूर का बेटा दर-दर की ठोकरें खाता है और उधर पांच-पांच ट्यूशनों के बावजूद मैट्रिक में तीन साल फेल होने वाला राजा बाबू अपने पिता की कम्पनी में डाइरेक्टर बन जाता है। चोर बाजारी और

स्मगलिंग के व्यापार में बेईमानी की ट्रेनिंग तो विरासत में मिल ही चुकी है आगे किताबी शिक्षा की क्या जरूरत है ?

मजदूर का बेटा बीमार पड़ता है तो पास में दवाई के पैसे नहीं हैं उधर राजबाबू को छींक आने पर टेलीफोन पर सूचना मिलते ही शहर का सबसे बड़ा डाक्टर दौड़ कर जाता है। मजदूर का बेटा अपने बच्चों को अच्छी पढ़ाई दिलाना चाहता है पर अच्छी पढ़ाई के लिए अच्छे पैसे उसके पास नहीं—उधर राजाबाबू के बच्चे शिमला और दार्जिलिंग के कान्वेण्ट में पढ़ते हैं। मजदूर के बेटे पर जुल्म होते हैं–मालिक के दलाल उसका सिर फोड़ देते हैं पर उसके पास मुकदमा करने और वकील की फीस देने लिए पैसे नहीं हैं उधर राजा बाबू के टैक्स चोरी और स्मगलिंग के मामले लड़ने के लिए हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक बड़े-बड़े नामी वकील हमेशा तैयार रहते हैं।

यहीं तक नहीं, राजाबाबू अपने काले धन की कृपा से सारे इलाके के सुप्रसिद्ध समाजसेवी भी हैं। रोटरी क्लब के प्रधान के नाते उन्हें सप्ताह में दो एक बार कॉकटेल पार्टियों में (शराब भोज) में जाना पड़ता है पर साथ में वे अपने पिता की स्मृति में बने विशाल दुर्गा मन्दिर और धर्मशाला की कमेटी के भी प्रधान हैं और उसकी बैठक में भी नियमित जाते हैं। नगर आर्य समाज की यज्ञशाला हैं पद्मश्री दानवीर सेठ राजाबाबू के नाम का बड़ा संगमर्मर का पत्थर भी लगा हुआ है। कांग्रेस पार्टी के चुनाव फंड में इस साल सबसे ज्यादा धन उन्होंने ही तो दिया था और अगली बार तो उन्हें लोकसभा के लिए कांग्रेस का टिकट भी मिलना निश्चित हो गया है ताकि वे अपनी प्रतिभा से राष्ट्र के उत्थान में मार्ग दर्शन कर सकें। मजदूर का बेटा भी कई बार चुनाव में खड़ा होने के सपने देखता है देश की हालत बदलने के लिए, पर जब उसे होश आता है कि उसके पास तो जमानत के ५०० रु० भी नहीं हैं नामांकन पत्र भरने के लिए तब उसे अपनी वास्तविकता का एहसास हो उठता है और एक वेदना भरी मुस्कराहट उसके होठों पर खेल जाती है।

रोज रोज के तीखे अनुभवों, खून पसीने से की गई ईमानदारी की कमाई के बावजूद भी पेट में सुलग रही भूख की आग, फटे हुए मैले कपड़े और टूटी हुई झोंपड़ी अन्त में एक दिन उसे मजबूर करती है यह

निर्णय करने के लिए वह आगे से मजदूरी नहीं करेगा। कहीं से चोरी करके या पाकेट मारके वह कुछ पैसा इक्ट्ठा करेगा, उससे व्यापार शुरू करेगा, मिलावट करेगा, टैक्स की चोरी करेगा, रिश्वत और बेईमानी का सहारा लेकर वह भी धनवान बनेगा, सुख की जिन्दगी जियेगा और समाज में इज्जत का हकदार बनेगा। यदि पहले काम में उसका दांव लग जाता है तो उसके लिए वैभव की एक नई जिन्दगी का द्वार खुल जाएगा वरना समाज में वह एक अपराधी की अभिशप्त जिन्दगी बिता कर मर जायेगा।

अब मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या आज हमारे देश के बहु-संख्यक गरीब लोगों की यही हालत नहीं है? क्या यह सच नहीं है कि लाखों करोड़ों नवयुवक अपने शिक्षण काल में अपने जीवन में एक आदर्शवाद का सपना संजोते हैं पर पढ़ाई समाप्त कर जीवन के संघर्ष की चौखट पर पांव रखते ही उनके आदर्शवाद का सपना चूर-चूर हो जाता है—अपनी आत्मा में सच्चाई, ईमानदारी, देशभक्ति आदि के पड़े हुए संस्कारों के कारण अन्दर उठती हुई आवाज को वे कुचलने के लिए मजबूर होकर भ्रष्टाचार और बेईमानी के रास्ते पर चल पड़ते हैं। अच्छे अच्छे व्यक्ति भी कहते हुए सुने जाते हैं कि आज के युग में बेईमानी के बगैर गुजारा नहीं। वास्तव में यह युग का दोष नहीं—यह व्यवस्था का दोष है। जब तक यह वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था है– तब तक पैसे का प्रभुत्व रहेगा और जब तक पैसे का यह प्रभुत्व रहेगा तब तक देश के नागरिकों में भ्रष्टाचार मिट नहीं सकता। और जब तक इस लूट-खसोट, भ्रष्टाचार, मिलावट, बेईमानी आदि का उन्मूलन नहीं होता तब तक ईमानदारी परिश्रम के प्रति निष्ठा और देशभक्ति आदि गुणों का विकास भी सम्भव नहीं है। इसलिए पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करने और वैदिक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करने के लिए हमें अग्रसर होना चाहिए। पैसे का महत्व तभी तक है जब तक पूंजी अर्थात् उत्पादन के साधनों पर वैय्यक्तिक स्वामित्व का अधिकार है—यह अधिकार समाप्त होते ही "पैसा बनाने की मशीन" पर व्यक्ति के बदले सारे समाज का स्वामित्व होगा। इसके बदले में समाज अपने प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समान अवसर योग्यता एवं आवश्यकता के अनुसार रोजगार का मौलिक अधिकार प्रदान कर सकेगा। जब राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक

को उसके बच्चों की पढ़ाई और पढ़ाई के बाद उनके नौकरी खोजने की चिन्ता से मुक्त कर दिया जायगा, जब उन्हें चिकित्सा और न्याय समान रूप से सुलभ होंगे और सबको बुढ़ापे की पेन्शन निश्चित होगी तो कोई भी नागरिक "मजबूर होकर" भ्रष्टाचारी और बेईमान नहीं बनेगा। यदि कुछ ऐसे मानव सुलभ कमजोरियां होंगी भी तो उन्हें शिक्षा, सिनेमा रेडियो, टेलीविजन आदि विचार प्रसारण के साधनों द्वारा समाजवाद, आध्यात्मवाद और राष्ट्रवाद के ओजस्वी विचारों से ऐसा ओतप्रोत कर दिया जायगा कि उनमें इस प्रकार की कमजोरियों के अंकुर फूट भी नहीं सकें अथवा फूटते ही नष्ट हो जायेंगे। समाज में प्रतिष्ठा का मानदण्ड पैसे से निर्धारित नहीं होगा वरन् उस व्यक्ति के समाज के उत्थान में किए गए योगदान पर, उसके श्रम, उसकी योग्यता और उसके निःस्वार्थ भावना पर अवलम्बित होगा।

वैदिक समाजवाद और भ्रष्टाचार–२

प्रश्न—वैदिक समाजवाद का जो आपने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है वह बड़ा आकर्षक और दिमाग को जँचने वाला है। एक बार तो सचमुच ऐसा लगता है कि हमारी आज की बहुत सी बुराइयों का एकमात्र इलाज वैदिक समाजवाद ही है पर कुछ शंकायें अभी भी बनी हुई हैं। मसलन यह समझ में नहीं आता कि लोगों को जब यह पता हो जाएगा कि उत्पादन के साधनों पर उनका व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं रहा तो वे मन लगाकर काम क्यों करेंगे ? हरेक इन्सान में ममत्व नाम की, अपनापन नाम की एक चीज होती है। जिस चीज को वह अपनी समझता है उसके लिए तो वह जी जान लड़ा देता है पर दूसरे की या सारे देश की होने के साथ ही उसका उस चीज से अपनापन समाप्त हो जाता है और वह जी जान लड़ा कर काम नहीं करता। उसका जोश, उसका उत्साह ठंडा पड़ जाता है और उसमें अधिक मेहनत करने के लिए इन्सेन्टिव (Incentive) या प्रेरणा नाम की कोई चीज नहीं होती। इस तरह आधे मन से किया गया काम सुन्दर नहीं होता, उत्पादन कम हो जाता है और खासकर भारत जैसे देश में जहां पहले ही लोग बहुत आलसी हैं, सब चीजों के राष्ट्रीयकरण की बीमारी आने पर तो बस भगवान ही मालिक होगा !

उत्तर—आपकी इस बात में कोई वजन नहीं है कि इन्सान ममत्व के बिना जी लगाकर काम नहीं करता और ममत्व होता है साधन पर स्वामित्व होने से। यदि आपकी यह विचारधारा मानली जाय तो देश का काम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकता। उदाहरण के लिए सेना में दुश्मन का मुकाबला कर रहा जवान कहेगा कि जब तक इस मशीनगन पर मेरा स्वामित्व निश्चित नहीं हो जाता और यह साधन मेरी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं बन जाती तब तक दुश्मन से लड़ने में मेरा जी नहीं लग रहा है। उधर कालेज का प्रोफेसर भी कहेगा कि जिस कमरे में खड़ा होकर मैं पढ़ा रहा हूँ उसका पहले मुझे स्वामित्व दो फिर मैं मन लगाकर पढ़ाऊंगा अन्यथा नहीं। इसी तरह प्रयोगशाला में परीक्षण कर रहा वैज्ञानिक भी चिल्लाकर कहेगा कि पहले इस प्रयोगशाला को मेरे नाम रजिस्ट्री करवाओ क्योंकि दूसरे की संपत्ति में मेरा जी नहीं लग रहा है। यदि इस तर्क को और खींचा गया तो जिलाधीश जिले पर

स्वामित्व मांगेगा और प्रधान मन्त्री सारे राष्ट्र को अपनी व्यक्तिगत संपत्ति बनाने की मांग करेगा। क्या अधिक कार्यकुशलता, प्रेरणा, उत्साह, जोश और इस तरह की पचास बातों के नाम पर आप इन मांगों को स्वीकार कर लेंगे ? और यदि नहीं, तो क्यों ? क्योंकि आपको पता है कि ऐसा कर लेने पर एक दिन तो क्या एक घण्टा भी काम नहीं चलेगा।

प्रश्न—बात तो आपकी भी उचित है—इस तरह तो सचमुच सत्यानाश हो जायगा। इस सिद्धान्त को केवल उत्पादन के ही क्षेत्र में लागू करना चाहिए क्योंकि देखिए जिस जिस उत्पादन के साधन पर किसी उद्योगपति आदि का व्यक्तिगत स्वामित्व है उस उस फैक्टरी या कारखाने आदि में उत्पादन बढ़िया और ज्यादा होता है और जिन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो चुका वहां काम घटिया और कम होता है। उदाहरण के लिए आप टाटा, बिड़ला आदि के उद्योगों को देखिए और सरकार द्वारा संचालित दुर्गापुर, राउरकेला, भिलाई आदि के कारखाने देखिए। प्राइवेट सेक्टर वाले उद्योगों में लाभ हैं, मुनाफा है और काम भी ज्यादा होता है उधर पब्लिक सेक्टर वाले उद्योग घाटे में चल रहे हैं। इसका तो निष्कर्ष यही निकलता है कि उत्पादन के साधनों का जहां तक सम्बन्ध है, साधन पर व्यक्तिगत स्वामित्व होने से काम करने का उत्साह बढ़ता है। क्या आप ऐसा नहीं मानते ?

उत्तर—हम ऐसा हरगिज नहीं मानते। यदि शिक्षा, रक्षा और प्रशासन आदि महत्वपूर्ण कार्य बिना साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के हो सकते हैं तो उत्पादन का कार्य भी बिना स्वामित्व के हो सकता है। और आपका यह कहना भी गलत है कि सभी सरकारी उद्योगों में घाटा हो रहा है। सरकारी उद्योगों का एकमात्र उद्देश्य पैसा कमाना भी नहीं होता और न होना चाहिए। फिर भी आपको पता होगा कि बहुत से सरकारी उद्योग घाटे में नहीं चल रहे बल्कि फायदे में चल रहे हैं जैसे शिपिंग कारपोरेशन ऑफ इण्डिया, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, हरयाणा रोडवेज आदि। अब रही बात टाटा बिड़ला आदि उद्योगपतियों के कारखाने में हो रहे उत्पादन आदि की बात। तो हम आपसे पूछना चाहते हैं कि क्या टाटा या बिड़ला की फैक्टरी के सारे उत्पादन का कार्य स्वयं टाटा या बिड़ला करते हैं या उनके कर्मचारी और मजदूर आदि करते हैं ? और क्या इन कर्मचारियों और मजदूरों का उस फैक्टरी पर स्वामित्व होता है ? जब उनका स्वामित्व नहीं होता तो वे खून पसीना

एक करके क्यों काम करते हैं ? यदि एक कारखाने के बीस हजार मजदूर बिना किसी स्वामित्व की भावना और प्रेरणा के जी जान लगाकर केवल अपने पारिश्रमिक के लिए काम कर सकते हैं तो उस कारखाने का मालिक भी क्यों नहीं पारिश्रमिक के आधार पर काम करता ? वह क्यों यह नखरा करता है कि बिना स्वामित्व के मेरा जी नहीं लगता। स्पष्ट है कि वह जानता हैं कि पारिश्रमिक के हिसाब से यदि वह काम करेगा तो वह मजदूरों का शोषण करके, बेईमानी, चोरबाजारी, टैक्स की चोरी आदि करके करोड़पति और अरबपति नहीं बन सकता। इसीलिए वह स्वामित्व का राग अलापता है।

जहाँ तक मजदूर के उत्साह और प्रेरणा का सवाल है यदि उसे उचित ढंग से शिक्षित किया जाय तो वह व्यक्तिगत उद्योग के बदले राष्ट्रीयकृत उद्योग में अधिक उत्साह से काम करेगा। क्योंकि एक ओर उसे मालूम होगा कि एक पूँजीपति का परिवार उसके श्रम का शोषण करके भोगविलास करना और गुलछर्रे उड़ाना चाहता है और दूसरी तरफ राष्ट्र की संपत्ति में वृद्धि होती है और उसका लाभ किसी एक परिवार के भोगविलास में खर्च न होकर सारे राष्ट्र के सामूहिक उत्थान में होता है।

प्रश्न--**फिर आज हमारे सभी राष्ट्रीयकृत उद्योगों में कार्य करने वाले मजदूरों में यह भावना काम क्यों नहीं कर रही ?**

उत्तर--आज जिन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया है वह वास्तव में समाजवाद के ढंग से नहीं किया गया है। उनमें काम करने वाले मजदूरों की शिक्षा पूंजीपति प्रणाली के अन्तर्गत हुई है और अपने चारों ओर के वातावरण में वे एक महास्वार्थ का नग्न नृत्य देखते हैं। दूसरा कारण यह है कि इस तथाकथित राष्ट्रीयकृत उद्योगों में पारिश्रमिक और वेतन प्रतिमान समाजवादी ढंग से निर्धारित नहीं किए गए है वरन् वही पूंजीवादी तरीका अपनाया गया है। बड़े-बड़े अफसर बड़ी कोठियों में मोटी तनख्वाह लेकर रहते हैं और उनके बीच वही मालिक मजदूर की भावना काम करती है। तीसरा कारण यह है कि इन उद्योगों के प्रबन्धक, प्रबन्ध शास्त्र के विशेषज्ञ न होकर असफल राजनीतिज्ञ या अवकाश प्राप्त नौकरशाह होते हैं। चौथा और सबसे प्रमुख कारण यह है कि एक ओर व्यक्तिगत संपत्ति

का मौलिक अधिकार देकर और दूसरी तरफ कुछ कारखानों का राष्ट्रीय-करण करके समाजवाद कभी नहीं आ सकता। हमारे देश में प्रचलित **मिश्रित अर्थ व्यवस्था और संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार** ये दोनों बहुत बड़ी रुकावटें हैं। इससे एक ओर तो व्यक्तिगत क्षेत्र के पूँजीपति योजना बद्ध तरीके से षड्यन्त्र आदि करके राष्ट्रीयकृत उद्योगों को हानि पहुंचाने (Sabotage) करने में सफल हो जाते हैं, दूसरी ओर राष्ट्रीयकृत उद्योग के प्रबन्धक अपने उत्पादन संबन्धी कई महत्वपूर्ण कार्यों का कांन्ट्रैक्ट पूँजीपतियों से अनुचित दरों पर करके लाखों करोड़ों कमा कर व्यक्ति-गत संपत्ति बनाना चाहते हैं। इस तरह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्त-र्गत कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कभी भी वांछित परिणाम नहीं दे सकता। राष्ट्रीयकरण का लाभ सर्वाङ्गीण वैदिक समाजवादी व्यवस्था में ही हो सकता है। भारत के अधकचरे कांग्रेसी समाजवादी तरीके से लाभ के बदले हानि अधिक होती है और राष्ट्रीयकृत उद्योगों में इस निरन्तर हो रही हानि को देखकर और इसके विपरीत पूँजी-पतियों के लाभ को देखकर देश की सामान्य जनता के दिल में जो समाजवाद के प्रति आस्था है वह हिलने लगती है। इसलिए कांग्रेसी समाजवाद वास्तविक समाजवाद का दुश्मन है और पूँजीवाद का दलाल है। इसे जितनी जल्दी समाप्त करके एक नये संविधान के अन्तर्गत वैदिक समाजवाद की स्थापना का संकल्प लिया जाएगा उतना ही इस देश की शोषित, कुंठित और प्रताड़ित मानवता का कल्याण होगा— इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा रास्ता नहीं !

वैदिक समाजवाद और भाग्यवाद

प्रश्न—क्या आप पुनर्जन्म का सिद्धांत मानते हैं ?

उत्तर—मानते हैं।

प्रश्न—क्या आप कर्मफल का सिद्धांत भी मानते हैं ?

उत्तर—मानते हैं।

प्रश्न—तो फिर आपको यह भी मानना पड़ेगा कि आज हमें अपने समाज में जो आर्थिक विषमता दिखाई पड़ रही है अमीर-गरीब के बीच जो खाई दिखाई पड़ रही है उसका मूल कारण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था आदि न होकर पिछले जन्म के कर्मों का फल है। कर्मफल का सिद्धांत यह बताता है कि जो आदमी जैसा कर्म करता है उसको अगले जन्म में वैसा ही फल मिलता है। इस सिद्धान्त को कोई टाल नहीं सकता। आज जो गरीब हैं, भूखे हैं, नंगे हैं, दुःखी हैं उन्होंने जरूर अपने पिछले जन्मों में बहुत बुरे कर्म किए होंगे—इसीलिए परमात्मा ने इस जन्म में उन्हें यह दण्ड दिया है जो उन्हें अवश्य भुगतना पड़ेगा। इसी प्रकार जिन लोगों ने पिछले जन्म में शुभ कर्म किए थे उन्हें परमातमा की कृपा से अपार धन दौलत और तद्‌जन्य सुख सुविधा की प्राप्ति होती है। इसे पूंजीवाद और शोषण आदि कहना ईश्वरीय न्याय व्यवस्था की तौहीन करना है। जब आप पहले मान चुके हैं कि वैदिक समाजवाद में कम्यूनिज्म की तरह नास्तिकता नहीं है—और आप ईश्वर और आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं तो फिर आपको यह भी मानना चाहिए यह गरीबी अमीरी का भेद हमारे आपके चाहने या न चाहने पर निर्भर नहीं करता वरन परमात्मा की न्याय व्यवस्था के अनुसार चलता है। और हमें इसमें कोई दखल नहीं देना चाहिए।

उत्तर—जब परमात्मा ने आपको नंगा पैदा किया था तो आपने कपड़े पहन कर उसकी "न्याय व्यवस्था" में दखल क्यों दिया ? जब परमात्मा ने आपको अनपढ़ पैदा किया था तो आपने पढ़ना लिखना सीखकर उसकी न्याय व्यवस्था में दखल क्यों किया ? जब आप भूखे, नंगे और अनपढ़ पैदा होकर भी अपनी हालतों में परिवर्तन करने का प्रयास करते हैं तब आपको उसी तरह सारे समाज की हालत को भी बदलने का प्रयास करना चाहिए। इस तरह के प्रयासों को परमात्मा

की न्याय व्यवस्था में दखल नहीं माना जा सकता। बल्कि परमात्मा ने तो हमें कर्म करने की स्वतन्त्रता प्रदान की है, हमें बुद्धि दी है, हमें बल दिया है और पुरुषार्थ की प्रबल प्रेरणा दी है। इसके साथ ही परमात्मा ने हमें वेद के माध्यम से यह ज्ञान दिया है कि हम समाजवाद के रास्ते चलकर अभ्युदय और निःश्रेयस् का मार्ग प्रशस्त करें। कर्म फल के सिद्धांत का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम अपनी परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए कर्म ही न करें और सब कुछ ईश्वर की व्यवस्था पर छोड़कर आर्थिक शोषण और विषमता को 'भाग्यवाद' के मत्थे मढ़ दें। कर्मफल का सिद्धांत तो उल्टे हमें इस बात की प्रेरणा देता है कि यदि हम इस शोषण और विषमता को मिटाने के लिए कर्म करेंगे तो यह अवश्य मिटकर रहेगी और वैदिक समाजवाद रूपी फल भी अवश्य मिलेगा।

प्रश्न—तो क्या आप भाग्य पर भी विश्वास नहीं करते ? जिसके भाग्य में जो लिखा है उसे कोई मिटा नहीं सकता। जिसे आप आर्थिक विषमता कहते हैं–वह भाग्य की देन है। कर्म तो आदमी बाद में करेगा—पर जब जन्म ही एक गरीब परिवार में लेगा तो उसे गरीबी के सारे कष्ट उठाने ही पड़ेंगे–दूसरी ओर एक बालक अमीर के घर में पैदा होकर बिना किसी कर्म के उसके करोड़ों की सम्पत्ति कोठी, कार आदि का उत्तराधिकारी बन जाता है—यह सब भाग्य का चक्कर नहीं है तो और क्या है ?

उत्तर—यह कोई भाग्य का चक्कर नहीं है वरन् सामाजिक एवं आर्थिक अन्याय है। योग्यता आदि की परख किए बिना किसी परिवार विशेष में जन्म लेने के कारण गरीब या अमीर बन जाने वाली बात नितान्त पूँजीवादी दुर्व्यवस्था की उपज है। यदि ऐसी दुर्व्यवस्था भाग्य के नाम पर पनप रही हो तो ऐसे भाग्य से भी लड़ना और अपने पुरुषार्थ से उसे बदल डालना हमारा कर्त्तव्य है। इस सम्बन्ध में निर्देश करते हुए सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान स्वामी समर्पणानन्द जी 'कायाकल्प' में लिखते हैं कि–

"जो बात सत्यासत्य विवेचक सहृदय लोगों को अखरती है वह यह है कि वह पूँजी बिना परीक्षा के उस पूँजीपति के पुत्र को क्यों मिले और दुरुपयोग-पर-दुरुपयोग करने पर भी उसके हाथों में क्यों पड़ी रहे ?"

"इसका उत्तर बहुत से लोग विधाता का विधान,कर्मफल, भाग्य अथवा ईश्वराज्ञा के नाम से देते हैं। ईश्वर के सबसे बड़े शत्रु उसके यह भाग्यवादी भक्त हैं वे भूल जाते हैं कि जिस भगवान ने हमें विशेष अवस्थाओं में जन्म दिया है उसी ने हमें उन्हें अपने अनुकूल करने की शक्ति और आदेश भी तो दिया है। हाथ, पैर, आँख, नाक, कान और सबसे बढ़कर सिर यह सब मूल्यवान् सम्पत्ति भगवान ने भाग्य से लड़कर उसे जीतने के लिए ही दी है।" भगवान ने कहा—

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि आप्नुहि श्रेयांसम् । अति समम्-क्राम ॥ (अथर्व २-११-१)

"अर्थात् तू शस्त्रों को काटने वाला शस्त्र है, तू दूषणों को दूषित कर देने वाली महाशक्ति है, तू चिन्ताओं का पहले से चिन्तन करने वाला अनागत विधाता है। उठ ! जो तेरे साथ की पंक्ति में है उन्हें पीछे छोड़ और जो अगली पंक्ति में है उनमें जा मिल।"

वह भगवान ही तो कहता है—

कृतम्मे दक्षिणेहस्ते जयो मे सव्य आहितः (अथर्व ७-५०-८)

अर्थात् हे मनुष्य ! सदा याद रख, पुरुषार्थ मेरे दाहिने हाथ में रहता है और विजय मेरे बांये हाथ में रहती है। भगवान का हाथ पैर सिर आदि शक्तियां हमें देना ही इस बात का प्रमाण है कि हमारा काम भाग्य से युद्ध करना है।

प्रश्न—किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती तो स्पष्ट रूप से गरीब-अमीर के बीच की खाई को पूर्वजन्म के कर्मों पर आधारित ईश्वरीय न्याय व्यवस्था मानते हैं। उदाहरण के लिए आप सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में देखिए। वे मानते हैं कि जो पुण्यात्मा जीव है वह राजा के घर पैदा होकर सुखी रहता है और पापी जीव घसियारे के घर उत्पन्न होकर दारिद्र्य का दुःख भोगता है।

उत्तर—इस प्रकार के उदाहरण को एकांगी रूप में लेने पर उपरोक्त भ्रम का होना स्वाभाविक है। पर किसी भी व्यक्ति की विचार धारा के प्रति न्याय करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मूल विचारधारा को समझा जाय। स्वामी दयानन्द की मूल विचारधारा जन्म पर आधारित व्यवस्थाओं के प्रति घोर विद्रोहात्मक है। वे तो जन्म

के आधार पर किसी को ब्राह्मण क्षत्रिय आदि मानने को तैयार नहीं है—सारी व्यवस्था ही वे व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित बनाना चाहते हैं। यहां तक कि विवाह आदि का सम्बन्ध भी योग्यतानुसार चाहते हैं। और जो व्यक्ति जन्म के आधार पर मां बेटे और पिता पुत्र के सम्बन्ध को बदल कर गुण, कर्म, स्वाभावानुसार बनाना चाहता हो उसके बारे में यह सोचना कि वे जन्मानुसार गरीबी अमीरी की खाई का समर्थन करते हैं–घोर अन्याय होगा। स्वामी दयानन्द की यह दृढ़ मान्यता है कि प्रारब्ध से पुरुषाथ बलवान है—वे भाग्यवादी होने के बदले पुरुषार्थी होना श्रेयस्कर समझते हैं। देखो सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में वे स्पष्ट लिखते हैं कि—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।"

इसी बात को उर्दू का एक शायर कहता है—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।

प्रश्न—आप चाहे जितना पुरुषार्थ करलें और चाहे जितना भाग्य से लड़ लें–आप विषमता को नहीं मिटा सकते। एक ही मां के दो बच्चों की योग्यता में अन्तर होता है। कई बच्चे जन्म से ही अंधे होते हैं, कई जन्म से कोढ़ी होते हैं–यह सब परमात्मा की लीला है। वह न्यायकारी है और जो भी करता है ठीक ही करता है। आप वैदिक समाजवाद तो क्या, इससे भी बड़ी कोई चीज ले आयें पर दुनियां में सभी इन्सान कभी बराबर नहीं हो सकते क्योंकि सबकी अपनी-अपनी किस्मत है–अपना-अपना भाग्य है। कोई कितना ही करले पांचों उंगलियां कभी बराबर नहीं हो सकतीं। जब दुनियां में एक आदमी का चेहरा दूसरे से नहीं मिलता तो बाकी अन्तर भी नहीं मिटाया जा सकता।

उत्तर—चलिए, आपकी बात को मान भी लें कि विषमता को नहीं मिटाया जा सकता—और हर बच्चे की अलग-अलग योग्यता होती है तो भी विषमता का सही माप करने के लिए आपको वैदिक समाजवाद का सहारा लेना ही पड़ेगा। जब तक आप सभी बच्चों को शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति के समान अवसर उपलब्ध नहीं करायेंगे तो यह कैसे पता लगा पायेंगे कि इनमें तेज बुद्धि का कौन है और मंद बुद्धि का

कौन है ? स्कूल में जब दौड़ की प्रतियोगिता होती है और मास्टर जी यह जानना चाहते हैं कि इन सभी बच्चों में कौन सबसे तेज दौड़ सकता है तब वे सभी बच्चों को एक चूने की लकीर पर खड़ा करते हैं और एक साथ दौड़ने के लिए सीटी बजाते हैं—ऐसा करके वे दौड़ने वालों में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, आदि का फैसला कर पाते हैं। अब यदि एक ही लकीर पर खड़े होने के बदले एक बालक अपने साथियों से आगे खड़ा हो जाए तो क्या उसकी वास्तविक योग्यता का पता चल सकता है ? सबको एक लाइन पर खड़ा करना अथवा सभी नागरिकों को उन्नति के समान अवसर प्रदान करना समाजवाद की बुनियादी शर्त है। इसके बिना जो विषमता है वह गलत है। जैसे आज हमारे देश में अमीरों के बच्चों की पढ़ाई लिखाई, भोजन वस्त्र आदि का तो विशेष प्रवन्ध है और गरीबों के बच्चों को पढ़ाई तो दूर भूख से छटपटाने पर रोटी भी नहीं मिलती। इस अन्याय पूर्ण व्यवस्था में यह कहना कि अमीर के बच्चों में अधिक योग्यता है क्योंकि उन्होंने पिछले जन्म में शुभ कर्म किए हैं, सरासर पूंजीवाद की दलाली है। यदि आपके पास विभिन्न ऊंचाई वाले दस डन्डे हैं तो उनकी विभिन्नता अथवा विषमता को आप उन डण्डों को समान धरातल पर खड़ा करके ही जान सकेंगे अन्यथा नहीं।

अब रहा सवाल जन्म से अन्धे या कोढ़ी आदि होने का। इस बात को भी कर्मों का फल मानकर चुप नहीं बैठा जा सकता। इसके कारणों का पता लगाना पड़ेगा। हो सकता है यह मां बाप की वजह से हो, हो सकता है यह प्रजनन सम्बन्धी किसी दोष के कारण हो। कारण का पता लगाकर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारे समाज में बहुत सी बीमारियां होती थीं जिन्हें किसी देवी, माता आदि का कोप माना जाता था और परिणामस्वरूप हजारों लाखों लोग उचित चिकित्सा के अभाव में मर जाते थे और लोग तकदीर की दुहाई देकर मन को समझा लेते थे। पर जब से इसका इलाज होने लगा है, न जाने वह देवी और तकदीर कहां रफू हो गये।

यह भी बात ध्यान देने की है कि वैदिक समाजवाद दुनियां के हर इन्सान को एकदम बराबर करने की बात नहीं कहता पर आर्थिक विषमता को कम करके, उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करके, शिक्षा आदि को निःशुल्क करके और रोजगार का मौलिक अधिकार देकर वह

इंसान और इंसान के बीच की लम्बी चौड़ी खाई को पाटकर एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना चाहता है जिसमें यह सारा मानव समाज एक परिवार के सदस्यों के रूप में रह सके और "वसुधैव कुटुम्बकम्" का स्वप्न साकार हो सके। जैसे परिवार में योग्यता और आवश्यकता के अनुसार विभिन्न सदस्यों की उपभोग सामग्री में थोड़ा बहुत अन्तर तो हो सकता है पर यह कदापि नहीं हो सकता कि एक सदस्य के पास तो उपभोग पदार्थों का भंडार हो और दूसरा दाने-दाने को मोहताज हो। पांचों उंगलियों के बराबर न होने का सिद्धांत हम भी मानते हैं पर इन पांच उंगलियों में सामान्य अथवा अति सामान्य सा ही अन्तर बर्दाश्त किया जाता है। यदि इन पांचों में से कोई एक उंगली तो हो जाय दस फुट की और बाकी रह जाय दो-दो इन्च की तो उस दस फुट वाली का "आपरेशन" तो करना ही पड़ेगा। इसी तरह चेहरे वाली बात है। यह ठीक है कि परमात्मा की इस अद्भुत सृष्टि में दुनियां के कोई दो चेहरे एकदम समान नहीं हैं पर इसका मतलब यह भी नहीं कि लोगों के चेहरों में आकाश पाताल का अन्तर हो। यह तो हो सकता है कि किसी की नाक दो इंच लम्बी है तो दूसरे की ढाई इंच लम्बी हो पर ऐसा तो नही है कि सामान्य लोगों की नाक तो है डेढ़ इन्च लम्बी और कुछ दस बीस पचास लोगों की नाक हो डेढ़ सौ फुट लम्बी !

हम यह पुनः कहना चाहते हैं कि वैदिक समाजवाद आत्मा को मानता है और परमात्मा को भी मानता है, पुनर्जन्म को मानता है और कर्मफल को भी मानता है पर भाग्यवाद के ढकोसले को हर्गिज-हर्गिज नहीं मानता। वैदिक समाजवाद जन्म जन्मान्तरों से जीवात्मा पर पड़ रहे शुभाशुभ कर्मों के संस्कार को भी स्वीकार करता है और तद्जन्य मानसिक एवं आध्यात्मिक वैषम्य को भी स्वीकार करता है पर इस वैषम्य की आड़ में पनपने वाले आर्थिक एवं सामाजिक शोषण के पूंजीवादी पाखण्ड को कदापि स्वीकार नहीं करता। भाग्यवाद वैदिक समाजवाद का सबसे बड़ा दुश्मन है। इस देश में सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति लाने के लिए इस भाग्यवाद रूपी दुश्मन को समाप्त करना अनिवार्य है।

प्रश्न—आप इस भाग्यवाद को नहीं मानना चाहते तो बेशक न मानें पर आप इसके पीछे लट्ठ लेकर क्यों पड़ते हैं ?

उत्तर-इसके पीछे लट्ठ ही नहीं वरन् भाला लेकर पड़ना होगा। हमारे देश की भोली भाली गरीब और शोषित जनता को सदियों से इस भाग्यवाद का जहरीला घूँट पिला पिलाकर इतना निस्तेज और नपुंसक बना दिया गया है कि वह उसके खून चूसने वालों के खिलाफ क्रांति की आवाज बुलन्द करने के बदले आह करने में भी असमर्थ पाती है। जब भी हमने तथाकथित धर्म के ठेकेदारों को इस आर्थिक विषमता की चक्की में पिस रहे करोड़ों मेहनतकश लोगों की दर्दनाक जिन्दगी का कारण पूछा तो यही जवाब मिला कि इनका भाग्य खोटा है क्योंकि इन्होंने पिछले जन्मों में खोटे कर्म किए थे। और जब हमने किसी नालायक निकम्मे पूंजीपतियों की रंगरेलियों और रात के बारह बारह बजे एयरकण्डीशन होटलों में अर्द्धनग्नाओं के साथ छलकते शराब के प्याला पर थिरकने का रहस्य पूछा तो यही जबाब मिला कि परमात्मा की लीला अपरम्पार है, इन्होंने पिछले जन्मों में इतना शुभ कर्म किया है कि बस पूछो मत ! उसी की वजह से इनका भाग्य चमक रहा है और लक्ष्मी का इन पर बरदहस्त है। ऐसे अवसरों पर इच्छा होती है कि इन पण्डों और पुजारियों को, इन भाग्यवाद के ठेकेदारों और पूंजीवाद के निकृष्ट दलालों को चौरास्ते पर किसी पेड़ से बांधकर, गरम-गरम लाल भाले को इनके पेट में घुसाया जाय और जब ये चीत्कार करके कहने लगे कि हमें क्यों सताते हो तो बड़े प्यार से इनको समझा कर कहा जाय कि पण्डित जी हम अपनी ओर से कुछ नहीं कर रहे— यह तो आपको आपके पिछले जन्म के कर्मों का फल मिल रहा है।

जबतक इस भाग्यवाद के जहरीले कीड़े को इस निर्ममता के साथ समाप्त नहीं किया जायगा तब तक यह गरीब, शोषित और पीड़ित मानवता की जिन्दगी में इन्कलाब लाने के रास्ते में जबरदस्त रुकावट बना रहेगा।

वैदिक समाजवाद और राष्ट्रवाद

प्रश्न—वैदिक समाजवाद की और सभी बातें तो बड़ी पसन्द आ रही हैं पर यह राष्ट्रीयकरण वाली बात पूरी तरह गले नहीं उतर पा रही है। राष्ट्रीयकरण में आज जिनके पास सम्पत्ति का अधिकार है वह समाप्त होता है—इसलिए उनका नाराज होना अवश्यम्भावी है। बहुत छोटी सम्पत्ति वाले तो बेशक राष्ट्रीयकरण का समर्थन करने लगें पर जो बड़ी बड़ी सम्पत्ति वाले हैं वे निश्चय ही आपका विरोध करेंगे। इसलिए क्या ही अच्छा हो कि आप राष्ट्रीयकरण के बदले राष्ट्रवाद की बात करें—देशभक्ति, प्रचण्ड देशभक्ति जब लोगों में पैदा होगी तो देश की सभी समस्याओं का समाधान होगा और उसमें किसी की सम्पत्ति छीनने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। समाजवाद और राष्ट्रीयकरण का नारा लगा कर लोगों को व्यर्थ में नाराज करने के बदले यदि केवल राष्ट्रभक्ति का उपदेश करें तो सभी साथ लग जायेंगे।

उत्तर—इस देश की कुछ पूंजीवादी राजनैतिक पार्टियां भी आपकी तरह समाजवाद की जगह राष्ट्रवाद की बातें करती हैं। उनका नारा है—हम समाजवाद नहीं राष्ट्रवाद चाहते हैं। लेकिन हमारी यह दृढ़ मान्यता है कि समाजवाद और संपत्ति के राष्ट्रीयकरण के बिना राष्ट्रवाद की बात करना न केवल एक ढकोसला है बल्कि एक शरारतपूर्ण पूंजीवादी षड्यंत्र है। संपत्ति के राष्ट्रीयकरण के विरोध का मतलब है व्यक्तिगत स्वामित्व का समर्थन और इसका मतलब है पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थन। पूंजीवादी व्यवस्था में देशभक्ति न तो सच्चे मायने में पनप सकती है और अतः न ही हमें उसे पनपाने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—तो क्या आप नहीं चाहते कि लोगों में देश भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी जाय? क्या आप नहीं चाहते कि हमारे वीर जवान अपने पूर्वजों से प्रेरणा लेकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए अपना बलिदान दें?

उत्तर—हम चाहते हैं कि लोगों में देशभक्ति की भावना काम करे पर देशभक्ति का यह कदापि मतलब नहीं कि चन्द पूंजीपति देश

की बहुसंख्यक गरीब जनता का शोषण करके अपने महल अटारी और तिजोरी की रक्षा के लिए इन किसान मजदूरों के बेटों को मरवा डालें। देशभक्ति का सबसे पहला सबूत तो यह होना चाहिए कि देश में बसने वाले प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समान अवसर मिलें और देश से शोषण समाप्त हो और गरीब अमीर का भेदभाव और मालिक मजदूर का भेदभाव समाप्त हो। यह सब करने के लिए जरूरी है कि सबसे पहले देश के समस्त उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण हो और सब बच्चों के लिए शिक्षा निःशुल्क हो और सबको रोजगार का मौलिक अधिकार हो। एक वाक्य में—राष्ट्रवाद लाने के लिए जरूरी है कि पहले समाजवाद लाया जाय। बिना समाजवाद के राष्ट्रवाद की या भारतीय संस्कृति की रक्षा की दुहाई देना एक पूंजीवादी प्रपंच है। कोरे राष्ट्रवाद के पुजारी राष्ट्र के नाम पर कुछ नदी नालों और पहाड़ पत्थरों का ही गुणगान करने लगते हैं, वे भूल जाते हैं कि वास्तविक राष्ट्र तो यहां बसने वाली मेहनतकश जनता है जिनके हितों को ठुकराकर राष्ट्र अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता। राष्ट्रवाद निरी भावुकता का नारा न होकर यथार्थ का परिचायक होना चाहिए।

आज हमारे देश में राष्ट्रवाद और देशभक्ति की बात उस समय अधिक जोर से कही जाती है जब कोई विदेशी हमला हमारे देश पर होता है। उस समय "जय जवान और जय किसान" के गीत गाए जाते हैं। रेडियो भी और सिनेमा भी देशभक्ति के रंग में रंग जाते हैं। रेलवे प्लेट फार्मों पर 'बड़े घर की महिलायें' चाय के केन्टीन खोलकर युद्ध में जा रहे जवानों को मुफ्त चाय पिलाती हैं और जवानों को मिठाई के पैकेट भेजती हैं और कुछ उनके लिए ऊनी कपड़े बुनती हैं। यह सब उसी समय तक चलता है जब तक युद्ध का खतरा बना रहता है। एक बार खतरा टलने के बाद जवान को कोई याद नहीं करता। फिर तो रेडियो के गीत भी बदल जाते हैं और स्टेशनों के केन्टीन भी बन्द हो जाते हैं। देश की रक्षा में तत्पर हमारे देश के जवान गरीब किसान और मजदूरों के बेटे हैं। मध्यवर्गीय परिवार के लड़के कप्तान मेजर आदि बनते हैं। बड़े पूंजीपति घरानों के लड़के फौज में नहीं जाते। वे तो युद्धकालीन परिस्थितियों का फायदा उठाकर एक ओर तो देशभक्ति का वातावरण पैदा करके गरीब के लड़कों को फौज में मरने

के लिए भेजकर अपनी तिजोरियों की सुरक्षा कर लेते हैं और दूसरी ओर कृत्रिम अभाव की सृष्टि करके दुगना तिगुना मुनाफा कमाते हैं। युद्ध के समय जब एक ओर किसान का बेटा लड़ाई के मैदान में मारा जाता है और बूढ़े किसान की जिन्दगी में अंधेरा छा जाता है, घर में बैठी जवान बहू विधवा हो जाती है और उसके छोटे-छोटे बच्चे अनाथ हो जाते हैं उस समय दूसरी ओर पूंजीपति के पौ बाहर होते रहते हैं। उसके घर में दिवाली मनाई जाती है और कोई उनके इस अवैध व्यापार पर उंगली न उठा सके, इसके लिए वे अपने काले धन में से कुछ टुकड़े "राष्ट्र रक्षा कोष" में फेंककर देशभक्ति का खिताब भी लूटते रहते हैं।

राष्ट्रवाद और राष्ट्र की रक्षा के नाम पर जिस देश के लिए हजारों लाखों नौजवान अपना सिर कटाते हैं उस देश के ६० प्रतिशत लोग इतने दीन हीन और गरीब हैं कि उनकी झोंपड़ी में एकाध टूटी चारपाई और दो चार मिट्टी के ठीकरों के सिवाय कोई सम्पत्ति नहीं जिसके छिन जाने का उन्हें भय हो। यह तो १० प्रतिशत से भी कम, देश के सरमायेदारों और इजारेदारों की कोठी, कार और कारखानों की रक्षा के लिए और उनके दलाल पूंजीशाह, नौकरशाह सरकार की कुर्सी की रक्षा के लिए गरीब के जवान बेटों की बलि दी जाती है। इसीलिए तो जो पूंजीपति शान्ति के समय किसान मजदूर के गले पर छुरी चलाता है वही पूंजीपति युद्ध के समय सीमा पर लड़ रहे जवानों को मिठाई के पैकेट्स भेजता है। शान्ति के समय जो 'मेम साहबें' दिल्ली कलकत्ता और बम्बई के शापिंग सेन्टर्स में दिन रात अपने भोग विलास के साधन खरीदतीं रहती हैं वे अचानक युद्ध के समय देश भक्त बनकर स्टेशनों पर चाय पिलाने लगती हैं। और जो महिलायें शान्ति के समय अपने 'पप्पी, माई डियर पप्पी' (कुत्ते के बच्चों) के लिए स्वेटर बुनती रहती हैं वे ही हिमालय की बर्फानी चट्टानों पर लड़ रहे सैनिकों के लिए ऊनी गल बन्द तैयार करने लगती हैं। मानों देश का यह समृद्ध वर्ग युद्ध के समय अपने ऐश्वर्य साधनों को बचाने के लिए अपने आप को शत्रु के सामने न खड़ा करके गरीब के बेटों को फुसला फुसला कर तथा देशभक्ति और राष्ट्रवाद की दुहाई दे देकर मौत के मुँह में झोंक देता है और कहता है कि देखो बेटो ! देर मत करो। लो यह चाय का कप

और जल्दी जाओ मैदान में। और देखो जमकर लड़ना बहादुरों! हँसते हँसते सीने पर गोली खा लेना पर पीठ न दिखाना। तुम्हारे शहीद हो जाने से तुम्हारा परिवार बेशक उजड़ जाय पर हमारे काकटेल पार्टियों और डिनरों में खलल नहीं पड़नी चाहिए।

बिना समाजवाद और राष्ट्रीयकरण के जो राष्ट्रवाद पनपाया जाता है उसकी यह घिनौनी तस्वीर है। हमें ऐसा राष्ट्रवाद नहीं चाहिए। इस पूंजीवादी ढांचे में फौज का सिपाही भी किसी राष्ट्रवाद से प्रेरित होकर नहीं लड़ता—वह अपनी गरीबी और भूख का मारा सेना में रोजगार की दृष्टि से जा फसता है और उसके बाद उसे जबर-दस्ती लड़ना पड़ता है। सच्चा राष्ट्रवाद तो इस देश में तभी पैदा होगा जब यह देश मुट्ठी भर विदेशी साम्राज्यवादियों और देशी पूंजीवादियों के चंगुल से छूट जायगा। जब इस देश का सारा धन और इस देश की सारी धरती इस देश में बसने और मेहनत करने वाले सभी किसान मजदूर—सभी श्रमजीवी और बुद्धिजीवी लोगों की समान रूप से होगी और जब इस देश के शासन से पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों के दलाल दरिन्दों को समाप्त कर जनता के सही प्रतिनिधियों का शासन-तन्त्र स्थापित होगा। तभी इस देश का हर किसान और हर जवान बड़े गर्व के साथ यह कह सकेगा कि 'यह देश मेरा अपना है, इसके खेत और इसके कारखाने मेरे अपने हैं—इसकी संस्कृति और इस का शासन मेरा अपना है और इसीलिए मैं अपने इस देश को, इस राष्ट्र को इतना प्यार करता हूँ कि इसकी रक्षा के लिए मैं सहर्ष अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर सकता हूं।"

यही सच्ची देश भक्ति है और यही सच्चा राष्ट्रवाद है।

प्रश्न—आपकी उपरोक्त सारी बातें ठीक भी हों तो वेदानुकूल नहीं है क्योंकि वेद में तो राष्ट्रवन्दना के मन्त्र भरे पड़े हैं और मातृभूमि की आराधना एक पुण्य कार्य बताया गया है। देश भक्ति तो समाजवाद और पूंजीवाद के झगड़ों से ऊपर की चीज है—यह एक ऐसी दिव्य भावना है जिसमें स्वार्थ की गंध नहीं आनी चाहिए। वेद को पढ़ने से तो हमें अनायास ही इस देश से, अपनी गौरवमयी भारतमाता से प्यार होता है और चाहे हम गरीब हों या अमीर, वेद हमें अपनी मातृभूमि के प्रति भक्ति का आदेश देता है।

उत्तर—सबसे पहले तो आपका यह भ्रम दूर होना चाहिए कि वेद केवल भारतवासियों को ही देशभक्ति का उपदेश दे रहा है। वेद सार्वभौम हैं और उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि सर्वथा एक समान है। जो व्यक्ति भावुकता में बहकर वैदिक ऋचाओं में भारतमाता की वन्दना ढूँढ़ते हैं और अपनी भावनाओं को वेदमन्त्रों पर आरोपित करते हैं, वे वेद के साथ सरासर अन्याय करते हैं। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि वेद मातृभूमि की आराधना सिखाता है—ऐसी भूमि की आराधना जो एक सच्चे मां की तरह अपने सभी पुत्रों को समान रूप से प्यार करती है और सबको उन्नति के समान अवसर प्रदान करती है। पर जो 'मां' अपने ९५ प्रतिशत बेटों को भूखा और नंगा रखकर उनके शोषण के द्वारा ५ प्रतिशत बेटों को खिलाती पिलाती है वह मां नहीं डायन है, चुड़ैल है। वेद हमें मातृभूमि की उपासना सिखाता है—डायन भूमि और चुड़ैल भूमि की उपासना नहीं सिखाता। तीसरी बात ध्यान देने की यह है कि वेद में मातृभूमि की उपासना केवल अपनी मातृभूमि तक नहीं रुक जाती। उसमें संकुचित और संकीर्ण राष्ट्रवाद-जैसा कि हिटलर या मुसोलिनी ने पैदा किया था, की उपासना करना नहीं लिखा। वेद की मातृभूमि उपासना, भूमिमाता की उपासना तक जाती है। और उस अर्थ में यह सारी धरती एक घर और सारी मानवता एक कुटुम्ब, एक परिवार के रूप में उपास्य होती है। वेद भारतीय कुटुम्बकम् या नैपाल कुटुम्बकम् की बात नहीं करता-वेद तो "वसुधैव कुटुम्बकम्" की आराधना सिखाता है और अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त तो संकीर्ण राष्ट्रवाद पर जबरदस्त चोट करता हुआ कहता है "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" यह भूमि मेरी माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। संकीर्ण राष्ट्रवाद का दृष्टिकोण साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म देता है जो कि शोषण और अन्याय का बड़ा ही घृणित स्वरूप है।

इस तरह हम देखते हैं कि वैदिक समाजवादी व्यवस्था में संकीर्ण राष्ट्रवाद का तो जरा भी स्थान नहीं है और उदात्त राष्ट्रवाद भी समाजवाद का विकल्प बनकर नहीं वरन् पूरक बनकर प्रतिष्ठित होता है।

वैदिक समाजवाद और जातिवाद

प्रश्न—वैदिक समाजवाद के सम्बन्ध में आपके सुलझे हुए विचारों को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता होती है। काश ! कि इन विचारों पर आधारित कोई राज्य या समाज खड़ा हो सकता। हमें तो ऐसा लगता है कि वैदिक समाजवाद और कहीं चाहें बेशक कामयाब हो जाय पर हमारे इस देश में तो होने से रहा। क्योंकि बात दरअसल यह है कि हमारे इस देश में न वैदिक समाजवाद पनप सकता है और न ही अवैदिक समाजवाद, न पूंजीवाद पनप सकता है और न साम्यवाद। इस देश में तो सिर्फ एक वाद है और उसका नाम है जातिवाद। यह जातिवाद यहां इतना गहरा है और इसकी पकड़ इतनी मजबूत है कि और कोई वाद इसके सामने नहीं टिक पाता। चुनावों में देख लें आप, किसी आर्थिक राजनैतिक मुद्दे पर चुनाव नहीं लड़े जाते। सिर्फ यह देखा जाता है कि इस क्षेत्र में कितने जाट हैं, कितने अहीर, कितने ब्राह्मण, कितने यादव, कितने हरिजन और कितने रेड्डी हैं। कहीं कहीं हिन्दू मुसलमान और सिख आदि का झगड़ा खड़ा हो जाता है। इसी तरह आप शादी ब्याह के मामले में देख लें, खान पान के मामले में देख लें। अब आप यह बताइये कि इस जातिवाद के दलदल में आप वैदिक समाजवाद की गाड़ी कैसे खींच ले जायेंगे और यदि किसी तीर-तुक्के से गाड़ी खींच भी गए तो इस भयंकर बीमारी का इलाज क्या करेंगे ?

उत्तर—आपका यह कहना काफी हद तक ठीक है कि इस देश में जातिवाद का रोग इतना भयंकर है कि इसे मिटाने के लिए किए गए आज तक के प्रयत्न सफल नहीं हो सके। पिछले २५ सालों में यह रोग घटा नहीं बल्कि कुछ न कुछ बढ़ा ही है। परन्तु रोग असाध्य नहीं, केवल सही उपचार की आवश्यकता है इस रोग का सही इलाज वैदिक समाजवाद ही हो सकता है। वैदिक समाजवाद की विशेषता यह है कि वह अन्य सुधारवादी आन्दोलनों की तरह ही सतही परिवर्तन की बात नहीं करता वरन् वह एक क्रांति के माध्यम से सम्पूर्ण व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की मांग रखता है। जब परिवर्तन तक या व्यक्ति परिवर्तन तक ही बात रह जाती है तो उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए महात्मा गांधी जी ने छुआछूत की भावना को समाप्त करने के

लिए चमार, चूहड़े, भंगी, मेहत्तर आदि कहलाने वालों व्यक्तियों का नाम बदल कर 'हरिजन' रख दिया पर इससे छुआछूत की भावना में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा।

इसी तरह आजकल के चुनावों में जातिवाद का विशेष बोलबाला इसलिये रहता है कि उनमें भाग लेने वाले व्यक्ति और पार्टियां केवल व्यक्ति परिवर्तन पर जोर देती हैं। आजतक हमारे देश में प्रचलित प्रायः सभी पार्टियां केवल मात्र व्यक्ति परिवर्तन पर जोर देती रहीं और उनके कार्यक्रम में यदि कोई भेद रहा भी तो वह सामान्य कार्य-प्रणाली का भेद ही रहा। व्यवस्था परिवर्तन की बात आज तक इस देश के राजनैतिक मंच से किसी ने नहीं की। यदि कुछ उग्रवामपंथी दलों ने व्यवस्था परिवर्तन की बात की भी तो चुनाव प्रणाली का बहिष्कार करके अथवा विदेशी शक्तियों की प्रेरणा पर की। इसलिए उन का उचित परीक्षण संभव नहीं हो सका। वैदिक समाजवाद की विचार-धारा ही एकमात्र ऐसो विचार धारा है जिसमें इस राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट रूप से व्यवस्था परिवर्तन की बात कही गई है परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस विचारधारा को गांव गांव तक फैलाकर व्यापक बनाया जाय और इस देश के करोड़ों शोषित एवं निर्धन वर्ग के मन मस्तिष्क को इस व्यवस्था मूलक क्रांतिकारी विचार-धारा से आन्दोलित किया जाय। हमें पूरा विश्वास है कि जब इस देश का बहुसंख्यक गरीब तबका इस विचारधारा के प्रति आकर्षित होगा तो चाहे चुनाव का संघर्ष हो अथवा और अन्य किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष, उसके सामने अपना हित चिन्तन करने लिए एक ऐसी कसौटी होगी जिसके सामने जातिवाद, बिरादरीवाद, सम्प्रदायवाद आदि के संकीर्ण दायरे टूट-टूट कर बिखर जायेंगे। जातिवाद का प्रभुत्व तभी तक है जब तक लगभग एक ही व्यवस्था (पूंजीवाद) के मानने वाले लोगों में संघर्ष है। जब संघर्ष दो विभिन्न व्यवस्थाओं के (पूंजीवाद और वैदिक समाजवाद) मानने वालों में होगा तो निश्चित रूप से निर्धन और शोषित समुदाय सभी 'जातियों' उप जातियों और साम्प्रदायों से खिंच कर वैदिक समाजवाद के झंडे के नीचे एकत्रित हो जायगा।

प्रश्न—जिस वैदिक समाजवाद के झण्डे के नीचे आप सबको एकत्रित करना चाहते हैं। वह वेद ही तो है सारे जातिवाद की जड़! ऋग्वेद के पुरुष

सूक्त में जो "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" आदि मन्त्र है। यहीं से जातिवाद पैदा हुआ। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियां थीं, बाद में इनकी उप जातियां बनने लगीं और बढ़ते बढ़ते आज इन जातियों की संख्या हजारों में पहुँच गई हैं। आपका यह वैदिक समाजवाद जातिवाद को समाप्त करने के बदले उसे और मजबूत करने में सहायक सिद्ध होगा।

उत्तर—आपकी यह सरासर मिथ्या धारणा है कि वेदों में जातिवाद को जन्म दिया गया है। ऋग्वेद के जिस पुरुष सूक्त का आपने हवाला दिया है वह जातिवाद का प्रतिपादक न होकर वर्णव्यवस्था का प्रतिपादक है। और यह वर्णव्यवस्था जातिवाद से ठीक विपरीत व्यवस्था है। जातिवाद विशुद्ध रूप से जन्म पर आधारित एक ऐसा सड़ा गला और दमघोंटू वाद है जिसका कोई सामाजिक आर्थिक औचित्य नहीं है। इसके विपरीत वर्णव्यवस्था समाज के प्रत्येक व्यक्ति के गुण कर्म एवं स्वभाव पर आधारित एक वैज्ञानिक ढंग की श्रम विभाजन प्रणाली है। (Division of Labour and a System of Specialisation based on every Individual's talent, action and aptitude) यह ठीक है कि वर्णव्यवस्था के कुछ वैदिक नाम आज जातिपरक अर्थों में रूढ़ हो गए हैं और उनके प्रयोग से सामान्य जनता में भ्रम का होना भी काफी हद तक स्वाभाविक है पर वैदिक समाजवाद को उन नामों के प्रयोग का कोई दुराग्रह नहीं है। आज हमें जो संघर्ष छेड़ना है वह आर्य और दस्यु के बीच का संघर्ष है। ऋ गतौ धातु के अनुसार आर्य का अर्थ है गतिशील, कर्मशील श्रमिक और अकर्मा दस्युः के अनुसार दस्यु का अर्थ है दूसरों की कमाई पर पलने वाला शोषक। मोटी भाषा में लड़ाई है कमेरे और लुटेरे के बीच। इस बुनियादी संघर्ष के दौर में हिन्दू और मुसलमान का झगड़ा खड़ा करना अथवा जाट, अहीर, बनिया और ब्राह्मण का झगड़ा करना क्रांति के रास्ते में रुकावट डालना होगा।

प्रश्न—आपकी उपर्युक्त बातों से सहमत होते हुए एक शंका पैदा होती है कि एक क्रांति के दौर में लोग अपनी संकीर्ण जातिगत मान्यताओं को कुछ समय के लिए भुला दें पर उन्हें स्थायी रूप से मिटाने का आखिर क्या उपाय है। यदि इस जातिवाद का सही और पूर्ण इलाज न किया गया तो समय पाकर यह पुनः अपना बीभत्स और घिनौना सिर उठा सकता है। इस बारे में वैदिक समाजवाद की क्या मान्यता है?

उत्तर—आपके प्रश्न के उत्तर में निवेदन है कि जातिवाद मुख्य रूप से सामंतवादी और पूंजीवादी व्यवस्था की उपज है। जब इन व्यवस्थाओं को ही समाप्त कर वैदिक समाजवाद की स्थापना हो जायगी तो जातिवाद अपनी मौत आप मर जायगा। पूंजीवादी व्यवस्था में इस जातिवाद को प्रश्रय देने के लिए विभिन्न जातियों और साम्प्रदायों के नाम पर शिक्षणालय खोले जाते हैं यथा—जाट स्कूल, वैश्य कालेज, अहीर महाविद्यालय, गौड़ ब्राह्मण कालेज, और सरजूपारी ब्राह्मण स्कूल, हिन्दू विश्वविद्यालय और मुस्लिम विश्वविद्यालय आदि। इन विद्यालयों में बहुधा जातिगत आधार पर बच्चों का दाखिला होता है और इस तरह जातिगत संस्कार बद्धमूल होते हैं। फिर इन बच्चों के विवाह आदि भी माता पिता द्वारा अपनी अपनी जाति बिरादरी में किया जाता है और इस तरह जातिवाद की बीमारी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में फैलती जाती है। वैदिक समाजवाद में जब शिक्षा का पूर्ण राष्ट्रीयकरण करके राष्ट्र प्रत्येक बालक को निशुःल्क शिक्षा और" तुल्य वस्त्र खानपान और आसन" दिए जायेंगे तो जातिवाद का जहर नई पीढ़ी में नहीं घुस पायगा। यदि फिर भी कुछ सस्कार बाकी रहेंगे तो उन्हें शिक्षा में समाजवादी पाठ्यक्रम का समावेश कर समाप्त किया जायेगा। शिक्षा की समाप्ति पर राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को (स्त्री और पुरुष दोनों को) अपने गुण कर्म स्वभाव अर्थात् योग्यतानुसार रोजगार का मौलिक अधिकार प्रदान किया जायगा। इस तरह पहले सबको उन्नति के समान अवसर प्रदान करने से और उसके बाद सबको रोजगार का अधिकार प्रदान करने से जातिवाद का गढ़ टूट जायगा और सभी अपनी योग्यतानुसार समाज में प्रतिष्ठित होंगे।

प्रश्न—यहां तक तो आपका रास्ता ठीक है पर आगे जब शादी ब्याह का मामला आयेगा तो आप देखेंगे कि माता पिता फिर उसी जातिवाद और बिरादरीवाद का जहरीला घूंट बच्चों को पीने के लिए मजबूर करते हैं और उस समय जातिवाद का जहर समाज में दहेज के कोढ़ को जन्म देता है। कोई ऐसा रास्ता आप बताइये ताकि शादी-ब्याह के मामले में जातिवाद का जहर और दहेज का कोढ़ समाप्त हो सके। जातिवाद की जड़ इसी जगह है यदि यहां आप उसे काबू कर सकें तो वह समाप्त हो सकता है।

उत्तर—आपके इस प्रश्न के लिए आप बधाई के पात्र हैं।

वास्तव में शादी ब्याह का मामला ऐसा पेचीदा मामला है कि यहां आकर बहुत से अच्छे सुलझे विचारों वाले लोग भी फिसल जाते हैं और जातिवाद का कीड़ा उनके दिमाग में पैदा हो ही जाता है। और यह भी सच है कि यह जाति की संकीर्णत्ता ही दहेज की कुप्रथा को बनाये रखती है। इस दहेज के अभिशाप के कारण समाज में लड़कियों का जीवन शादी से पहले भी और शादी के बाद में भी एक अभिशप्त का जीवन हो जाता है। आजतक इस कुप्रथा के खिलाफ जितने भी सुधार-वादी कदम उठाये गए और कानून भी बनाए गए वे सभी नितान्त असफल सिद्ध हुए। इसका भी एक मात्र इलाज वैदिक समाजवाद है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत विवाह का मामला माता पिता के क्षेत्र से हटाकर लड़का लड़की की इच्छानुसार और आचार्य एवं आचार्या के संरक्षण में सम्पन्न होता है। इस सम्बन्ध में निर्देश करते हुए स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश लिखते हैं।

"जब कन्या व वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको "फोटोग्राफ" कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों के एवं कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें। जिस जिस का रूप मिल जाय, उस उस के इतिहास अर्थात् जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म चरित्र का पुस्तक हो उसको अध्यापक लोग मंगवा के देख लेवें। जब दोनों के गुण कर्मस्वभाव सदृश हो तब जिस जिसके साथ जिस जिस का विवाह होना योग्य समझें उस उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहां, नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों व कन्या के माता पिता आदि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनो की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।"

इससे पहले वे इसी चौथे समुल्लास में स्पष्ट लिखते हैं कि "चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्मस्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए। इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य नहीं है।"

प्रश्न—"विवाह माता पिता के आधीन होना चाहिए वा लड़का लड़की के आधीन रहे ?"

उत्तर–"लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम और सन्तान उत्तम होती हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है माता पिता का नहीं क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है।"

उपरोक्त बातों को यदि व्यावहारिक रूप दिया जाय तो विवाह के सम्बन्ध में जन्मगत जातिपात अथवा बिरादरीवाद का प्रभाव समाप्त कर लड़का लड़की की योग्यता और परस्पर अभिरुचि के आधार पर विवाह सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। और सबसे मुख्य बात यह है कि इस विवाह प्रणाली में दहेज का कोई स्थान नहीं रह जाता। वास्तविकता तो यह है कि समाज में उत्पादन के साधनों से सारे समाज का स्वामित्व हो जाता है और जहां निःशुल्क शिक्षा प्राप्त कर प्रत्येक युवक और युवती को रोजगार का अधिकार होता है वहां दहेज जैसे नितान्त पूंजीवादी कलंक के लिए कोई स्थान नहीं रहता और यदि कुछ स्थान रह भी जाय तो उपर्युक्त विवाह प्रणाली द्वारा उसका समूलोच्छेद किया जा सकेगा।

वैदिक समाजवाद और धर्मनिरपेक्षवाद

प्रश्न—वैदिक समाजवाद धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को स्वीकार करता है या नहीं ?

उत्तर—हर्गिज नहीं करता।

प्रश्न—तो क्या आप वैदिक समाजवाद के नाम पर साम्प्रदायिकता का राज्य लाना चाहते हैं ? क्या आप सभी हिन्दुओं पर, मुसलमानों पर, ईसाइयों पर, सिक्खों और जैनियों पर अपना वैदिक धर्म थोपना चाहते हैं ?

उत्तर—जब हम किसी को हिन्दू या मुसलमान या ईसाई या सिक्ख अथवा जैनी नहीं मानते तो हमारा उन पर कुछ थोपने का सवाल ही नहीं उठता। हमारी नजर में या यों कहें कि वैदिक समाजवाद की नजर में मानवता को इस प्रकार के मत मतान्तरों, मजहबों आदि में बांटना ही सबसे बड़ी साम्प्रदायिकता और सबसे बड़ी संकीर्णता है। वैदिक समाजवाद मानव मात्र को केवल आर्य और दस्यु में विभाजित करता है, आर्य कमेरा है और दस्यु लुटेरा है, आर्य श्रमिक है (बौद्धिक श्रम अथवा शारीरिक श्रम करने वाला) और दस्यु इन श्रमिकों के श्रम का शोषण करने वाला शोषक है। हमारा उद्देश्य बिल्कुल साफ है—हम किसी तथाकथित हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि पर कोई नया सम्प्रदाय या मजहब नहीं थोपना चाहते। परन्तु हम दुनियां के तमाम शोषकों पर आर्यों का, श्रमिकों का शासन अवश्य थोपना चाहते हैं।

रहा सवाल धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को न मानने का। सबसे पहले हमारे दिमाग में धर्म शब्द की सही व्याख्या होनी जरूरी है। दुनियां में सबसे अधिक अन्याय इस धर्म शब्द के साथ हुआ है। धर्म शब्द की सही व्याख्या के अनुसार धर्म का मतलब वे सभी नियम, सिद्धात और कानून हैं जिससे हमारा जीवन और हमारा यह समाज धारण किया जाता है। वैदिक वाङ्मय में धर्म की व्याख्या महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में करते हुए कहा– यतो अभ्युदय निश्श्रेयस् सिद्धि स धर्मः। जिन बातों से अथवा जिन कार्यों से हमारी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है वे सभी बातें और वे सभी कार्य धर्म

हैं। उदाहरण के लिए रोटी खाना, कपड़े पहनना, मकान में रहना, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना, मिथ्याचरण को छोड़ सत्याचरण करना लोभ लालच को छोड़ त्याग की भावना स्वीकार करना आदि बातें ही धर्म हैं। इसी बात को मनु ने धर्म के दश लक्षण गिनाते हुए बड़े सरल किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहा—

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रह
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकम् धर्म लक्षणं

इस तरह धैर्य, सहनशीलता, अस्तेय, संयम, स्वच्छता, विद्या, बुद्धि सत्य, अक्रोध आदि जो गुण हैं जो प्रत्येक मनुष्य में होने चाहिये ये ही धर्म के लक्षण हैं। इन गुणों के बिना कोई भी मानव समाज कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता। भौतिक विकास में तत्पर व्यक्ति के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास में तत्पर व्यक्ति को भी इन्हीं गुणों की उपासना करनी पड़ती है। महर्षि पतञ्जलि के अष्टांग योग के अनुसार आध्यात्मिक साधना की आठ सीढ़ियां हैं यथा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ये सभी बातें मनुष्य द्वारा समाज में रहते हुए शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाये रखकर विकास करने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक सिद्धांत हैं। इन सिद्धांतों की उपेक्षा न कोई हिन्दू कर सकता, न कोई मुसलमान या ईसाई कर सकता। वेद इन्हीं सार्वभौम वैज्ञानिक सिद्धांतों की बीजरूप में, सूत्र रूप में व्याख्या करता है। वेद का अर्थ ही ज्ञान है। इसमें कोई ऐसी बात नहीं हो सकती जो बुद्धि, तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरी न उतरे और जो मानवमात्र के लिए उपयोगी न हो। इसके ऊपर भी हमारी यह मान्यता है कि हम सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहेंगे। धर्म के इस व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए ही हमारे देश में कानून की पुस्तकों (Laws and statutes) को धर्मशास्त्र की संज्ञा दी गई।

समय समय पर इस कानून और सामाजिक न्याय की पकड़ जब ढीली पड़ने लगी तो कतिपय ऐतिहासिक महापुरुषों ने देशकाल की परिस्थिति के अनुसार इन व्यवस्थाओं की उपादेयता पर जोर दिया। ऐसे महापुरुषों के भक्तों ने कुछ उनकी और कुछ अपनी बातें जोड़कर

नये सम्प्रदाय और मत मतान्तर खड़े कर दिए। इन नये सम्प्रदायों और संकीर्ण मतावलंबियों को धर्म का नाम ले कर अपनी दुकान खड़ी करने में सुविधा प्रतीत हुई और इस तरह धर्म के वैज्ञानिक अर्थ में विकृति आने लगी। इस विकृति का एक स्पष्ट परिणाम यह निकला कि जो धर्म सामाजिक न्याय और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित था वह अब नाना सम्प्रदायों के पैगम्बर, अवतार, मसीहा, तीर्थंकर और गुरु आदि व्यक्तित्वों पर आधारित हो गया। फिर आपस में इन सम्प्रदायों की होड़ में यह आवश्यक बन गया कि प्रत्येक सम्प्रदाय अपने 'मसीहा' को दूसरों की तुलना में अलौकिक सिद्ध करे चाहे उस अलौकिकता की सिद्धि में अंधविश्वास और पाखण्ड का भी सहारा क्यों न लेना पड़े। सिद्धांतों को गौण बनाकर व्यक्तिपूजा को प्राथमिकता देने का यह दुष्परिणाम हुआ कि आज 'हिन्दू धर्म' में से राम, कृष्ण आदि अवतारों को निकाल देने पर यह धर्म निर्जीव हो जाता है, इस्लाम में से मोहम्मद साहब को हटा देने पर इस्लाम लड़खड़ा जाता है, ईसामसीह पर ईमान लाये बगैर ईसाइयत का महल ढह जाता है, 'बौद्धधर्म में से गौतम बुद्ध को तिरोहित कर देने पर बौद्धधर्म भी अन्धकार में विलीन हो जाता है। इस व्यक्तिवाद पर आधारित धर्मों की परम्परा ने आगे चलकर ऐसे-ऐसे धूर्त, पाखण्डी और प्रपंची गुरुओं, योगियों और बाल-योगियों को प्रश्रय दिया है जो हमारे समाज और राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं।

इस तरह आज हमारे सामने 'धर्म' के नाम पर दोनों स्वरूप विद्यमान हैं—एक वैज्ञानिक है तो दूसरा अवैज्ञानिक है। एक सार्वभौमिक है तो दूसरा साम्प्रदायिक है। एक उदार है तो दूसरा संकीर्ण है। एक बुद्धि तर्क और विज्ञान की कसौटी पर कसा हुआ है तो दूसरा बुद्धि तर्क और विज्ञान को तिलाञ्जलि देकर अन्धश्रद्धा और गुरुडम पर टिका हुआ है। पहला स्वरूप शोषण का दुश्मन है तो दूसरा शोषण का दलाल है।

'धर्म निरपेक्षता' के प्रतिपादकों का विचार है कि राज्य को अथवा सरकार को धर्म के मामले में उदासीन रहना चाहिए। किसी का पक्ष न लेते हुए तटस्थ रहना चाहिए। 'हर प्रकार के धर्म को' पनपने की छूट देनी चाहिए। वैदिक समाजवाद इस विचारधारा से असहमत है।

वैदिक समाजवाद की मान्यता है कि यदि हम धर्म के वैज्ञानिक, सार्वभौमिक, उदार एवं तर्कसंगत स्वरूप को नहीं स्वीकार करते तो हमारी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। यदि समाज में संयम और सदाचार को प्रतिष्ठित न किया गया तो दुराचार और कदाचार और भ्रष्टाचार और व्यभिचार अपनी जड़ें जमा लेंगे। यदि हम अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह को प्रतिष्ठित नहीं करते तो निश्चित रूप से हिंसा शोषण, और विषमता का दानव दनदनाता रहेगा और समाजवाद के बदले पूंजीवाद का पाखण्ड पनपता चला जायेगा।

जहां एक ओर हम धर्म के इस वैज्ञानिक और विधायक स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करेंगे वहां दूसरी ओर धर्म के नाम पैदा हुई विकृतियों को समाप्त करने का प्रयास करेंगे। यदि निरपेक्षता का ढकोसला अपना कर हम धर्म के नाम पर पनप रहे अंधविश्वास, गुरुडम, भाग्यवाद और पूंजीवादी प्रवृत्तियों के खिलाफ संघर्ष नहीं करेंगे तो वैदिक समाजवाद की सारी उपलब्धियां हासिल करनी ही बहुत कठिन हो जायगी और जो थोड़ी बहुत उपलब्धियां होंगी भी, उन पर भी पानी फिर जायगा।

प्रश्न—आपकी यह वेद वर्णित धर्म की व्याख्या बहुत उपयुक्त और राष्ट्रोन्नति के लिए अनिवार्य भी है। इसे हम धर्म कह लें या सदाचार अथवा नैतिकता कह लें—इन मानवीय गुणों का विकास तो होना ही चाहिए और इसलिए ऐसे धर्म से निरपेक्ष या उदासीन होना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। परन्तु अन्य सम्प्रदायों के लोगों को भी साथ मिलाने के लिए क्या यह जरुरी नहीं होगा कि हम उन्हें "उपासना पद्धति की स्वतन्त्रता" देकर खुश रखें। कोई मन्दिर में जाता है या कोई मस्जिद या चर्च में जाता है तो जाता रहे—'धर्म' उसका व्यक्तिगत मामला बना रहे और आर्थिक राजनैतिक लड़ाई में वह धर्म का दखल न करे।

उत्तर—इस तुष्टीकरण की नीति से क्षणिक लाभ तो हो सकता है और इस नीति का अवलम्बन आरंभ में आवश्यक भी प्रतीत हो सकता है पर इस नीति के द्वारा राष्ट्र का सही मार्ग दर्शन नहीं हो सकता। "उपासना पद्धति की स्वतन्त्रता" के नाम पर नाना मत्-मतान्तरों को खुश करने का प्रयास तो किया जा सकता है पर बिना अंकुश के यह स्वतन्त्रता समाज की प्रगति में बाधक भी बन सकता है।

उदाहरण के लिए जो 'परमात्मा' का उपासक मन्दिर की मूर्ति के सामने सवा रुपये के लड्डू की 'भेंट' चढ़ाकर सवा लाख का मुक़दमा जीतना चाहता है, क्या वह सरकारी अदालत में अपना काम निकालने के लिए सवा सौ रुपये की घूस देते हुए संकोच करेगा ? जिस देश में उपासना के नाम पर करोड़ों भूख से बिलबिलाते नंगे बच्चों की पेट पर लात मार कर मन्दिर की पाषाण प्रतिमा को दूध से नहलाया जाता हैं, जहां करोड़ों मेहनतकश मजदूरों को कड़कती सर्दी में सड़कों पर ठिठुरता छोड़कर पत्थर के भगवानों के लिए विशाल मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों का निर्माण किया जाता है, जहां कानून की नजर से छिप कर किए गए पापों से छुटकारा पाने के लिए गंगा में डुबकी लगाई जाती है या मसीहाओं पर ईमान लाया जाता है, उस देश के औसत नागरिकों के हृदय में क्या कभी चरित्र के प्रति निष्ठा, भ्रष्टाचार के प्रति विद्रोह और मानवता के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध हो सकता है ? जिस देश में परमात्मा की उपासना के नाम पर रामनाम की माला हाथ में लेकर जाप किया जाता है—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम

क्या उस देश की जनता कभी खून पसीना एक करके राष्ट्र में आर्थिक समृद्धि लाने के लिए जी तोड़ मेहनत कर सकती है ? क्या तथाकथित धर्म की प्रचलित कर्मफल की फिलासफी को मानने वाला और अपनी गरीबी एवं जहालत को पूर्व जन्मों का कर्मफल मानकर सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण की चक्की में पिसने वाला एक मजदूर कभी इन खून चूसने वालों की हड्डियां चबा जाने के लिए क्रोध से दांत कट-कटा सकता है ? यह कौन नहीं जानता कि इस तथाकथित धर्मप्रधान देश की गरीबी तथा सामाजिक गिरावट का मुख्य कारण यहां का दम घोंटने वाला दकियानूसी अंधविश्वास और लूट पर टिका हुआ 'धर्म' है ? "ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या" का सिद्धांत प्रतिपादित करने वाले जगद्गुरुओं की उपासक मण्डली ने इस देश की जवानी को कितना काहिल और कमजोर बना दिया—इस बात का प्रमाण हमारा पिछले कई सदियों की गुलामी का इतिहास प्रत्यक्ष है।

उधर इस गुलामी और पिछड़ेपन का लाभ उठाकर साम्राज्यवादी

भेड़िये "धर्मप्रचारक" की खाल ओढ़े लपलपाती जीभ लेकर हमारे वन्य प्रदेशों में घुस गये और धर्म परिवर्तन के नाम पर राष्ट्रीयता परिवर्तन करने लगे। धर्म निरपेक्षता की आड़ में बढ़ रहे साम्राज्यवादी भेड़ियों की जब तक खाल नहीं उतार ली जाती तब तक क्या इस राष्ट्र की राष्ट्रीयता सुरक्षित रह सकती है ? इसी तरह इस देश की हवा में सांस लेने वाला और यहाँ का अन्न खाकर पलने वाला जो नागरिक खुदा की इबादत करने बैठता है तो गंगा और यमुना की कलकल निनादिनी अजस्त्र पावन धारा और लहलहाते खेतों की हरियाली से मुंह फेरकर अरब के सूखे वीरान रेगिस्तान की तरफ मुंह करके श्रद्धा से नमन करता है तो क्या आशा की जा सकती है कि इस देश की सीमाओं पर दुश्मन की बेशर्म और नापाक हरकतों से उसके खून में उबाल आयेगा ?

क्या यह सच नहीं है कि इस देश की भोलीभाली जनता को बरगलाने के लिए यहां नित्य नये अवतार जम्बों जेटों में हजारों गोरी चमड़ी वाले विदेशी भक्तों के साथ अवतरित होते रहते हैं और पाखण्ड प्रचार से लेकर तस्कर व्यापार तक का सिलसिला सरकार की धर्म निरपेक्ष नीति के नीचे फलता फूलता रहता है। जिस देश का मजदूर दाने दाने को मोहताज होकर दम तोड़ रहा हो वहा धर्म निरपेक्षता की आड़ में एक एक चन्डी महायज्ञ में ६५-६५ लाख रुपये खर्च किए जा रहे हों तो क्या यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि आम जनता की बरबादी में अपना निहित स्वार्थ सिद्ध करने वाली सत्ता के लिए धर्म निरपेक्षता एक कवच का काम करती है।

ये और इस तरह के हजारों प्रश्न हैं जो 'विशुद्ध धार्मिक मान्यतायें' होते हुए भी हमारे सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं से जुड़े हुए हैं और क्रान्ति की जड़ों को खोखला कर रहे हैं। इसलिए जबतक धर्म के नाम पर फैले हुए इस विष को बाहर निकाल कर बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरा उतरने वाले वैज्ञानिक धर्म का शुद्ध रक्त प्रवाहित नहीं किया जाता तब तक इस म्रियमाण राष्ट्र की रगों में क्रांति का स्फुरण संचारित नहीं हो सकता और राष्ट्रीयता एवं आर्थिक विकास की स्वस्थ परम्परायें अपनी जड़ें नहीं जमा सकतीं।

प्रश्न—मैं आपकी बातों से सहमत होते हुए भी आपको यह सलाह दूंगा कि आप नाहक इस धर्म-अधर्म के पचड़े में न पड़े। नई तालीम और नई

रोशनी वाला नौजवान स्वयं इन धर्म के ठेकेदारों से नफरत करता है। आप जिन बातों को समाप्त करने के लिए इतनी योजना बना रहे हैं वे सभी बातें आधुनिक विज्ञान और भौतिकवाद की चकाचौंध में अपनी मौत आप मर रही हैं। इसलिए क्यों अपने वैदिक समाजवाद में इस धर्म के बखेड़े को शामिल कर नाहक एक बला मोल लेते हैं?

उत्तर—यह दृष्टिकोण भी एक नये खतरे को जन्म देना है। हम धर्म के विगड़े हुए विकृत स्वरूप को तो मिटाना चाहते हैं पर धर्म को अपनी मौत नहीं मरने देना चाहते। हम नाक पर बैठी मक्खी को तो हटाना चाहते हैं पर नाक को ही काटकर उड़ा देना नहीं चाहते। धर्म के गलत रूप को देखकर धर्म को अफीम कह देना और परमात्मा के पाखण्डी भक्तों की आचारहीनता देखकर परमात्मा की अर्थी निकाल देना कार्ल मार्क्स और लेनिन के अनुयायियों को शोभा दे सकता है पर दयानन्द के सैनिकों को नहीं। ऋषि दयानंद ने धर्म की ओट में पनप रहे दुराचार की पराकाष्ठा और कुत्सित वाममार्ग की विभीषिका को देखकर भी किसी उतावलेपन में आकर धर्म को अफीम नहीं कहा वरन वेद के वैज्ञानिक धर्म को समाज के हर पहलू और जीवन की हर सांस के लिए अनिवार्य घोषित किया। यही कारण है कि जीवन भर अवतार-वाद, पाखण्डवाद; और पोपलीला का खण्डन करने वाले दयानंद ने आर्य समाज के प्रथम नियम में ही यह घोषणा की कि "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।" और यही कारण है कि जिस राज्य व्यवस्था के ऊपर वे वैदिक समाज-वाद की स्थापना का गुरुतर भार रखते हैं उस व्यवस्था को और व्यवस्था संचालकों को आदेश देते हैं कि–"राजा (अर्थात् सभापति) और राजसभा के सभासद तब हो सकते हैं जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना, ज्ञान विद्याओं के जानने वालों से तीनों विद्या, सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावरूप को यथावत् ज़ानने वाले रूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्त्ताओं का आरम्भ,(कहना और पूछना) सीखकर सभासद या सभापति हो सकें। सब सभासद और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हटे हटाये रहें। इसलिए रात दिन नियत समय पर योगाभ्यास भी करते हैं। क्योंकि जो जितेन्द्रिय अपनी इन्द्रियों (जो मन प्राण और शरीर प्रजा

है इस) को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।" —सत्यार्थ प्रकाश छठा समुल्लास

इसलिए हमारी यह निश्चित मान्यता है कि धर्म निरपेक्षता का नारा लगाने वाले सभी राजनैतिक दल खोखले और छिछले हैं और हमारा यह स्पष्ट सिद्धांत है कि वैदिक समाजवाद की राजनीति धर्म निरपेक्ष नहीं वरन धर्म सापेक्ष है और हमारी राजनीति भी कोरी राजनीति नहीं वरन राजधर्म है।

वैदिक समाजवाद में चिन्ताओं का राष्ट्रीयकरण

प्रश्न—वैदिक समाजवाद में सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण वाली बात सिद्धांत में बहुत ठीक होते हुए भी व्यवहार में बिल्कुल गलत है। कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति छिनवाने के लिए राजी नहीं है। गरीब से गरीब आदमी भी अपनी झोपड़ी पर अपना व्यक्तिगत अधिकार मानता है और यदि वह झोपड़ी उससे छीन ली गई तो उसे बहुत कष्ट होगा। इसी तरह प्रत्येक किसान को अपनी जमीन से बेहद लगाव होता है—चाहे उसके पास खेत के नाम पर दो बीघे जमीन ही क्यों न हो पर वह अपने आपको उस जमीन का स्वामी समझता है और इस स्वामित्व को वह किसी भी कीमत पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं। यदि आप उससे जबरदस्ती छीनना चाहेंगे तो वह अपने अधिकार की रक्षा के लिए अपने प्राण तक देने के लिए तैयार हो जायगा। यही हालत छोटे से छोटे दुकानदार की है। ऐसी स्थिति में आपका समाजवाद तो कभी लागू ही नहीं हो हो पायगा—केवल वेद या राजधर्म के पन्नों में सुरक्षित रहेगा जब तक दीमक उसे न चाट लें।

उत्तर—सच बात तो यह है कि व्यावहारिकता की कमी वैदिक समाजवाद में नहीं है अपितु आपके सोचने में है। सबसे पहले तो आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप गरीबों को यह बहकाने की कोशिश न करें कि वैदिक समाजवाद में उनकी सारी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण होगा और उनकी झोंपड़ी, उनके कपड़े और उनके बिस्तर आदि सरकार छीन लेगी। वैदिक समाजवाद में उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जायेगा। उपभोग के साधनों पर तो व्यक्ति का ही स्वामित्व रहेगा। रहने का मकान, कपड़े, बिस्तर. खानेपीने की चीजें और इसी तरह की बहुत सी वस्तुएं उपभोग के साधन हैं—इन साधनों के द्वारा एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण नहीं कर सकता अतएव इनके राष्ट्रीयकरण का कोई अर्थ नहीं है। हां, पारिश्रमिक और उपभोग की वस्तुओं का वितरण इस ढंग से होगा कि मूलभूत आवश्यकतायें सबकी पूरी हों और विषमता १ और १० के अनुपात से अधिक न हो। वैदिक समाजवाद में उत्पादन के सभी साधनों का जिसमें खेत, खदान, फैक्ट्री

आदि आते हैं, अवश्य राष्ट्रीयकरण किया जायगा। कुछ पूंजीवाद के निकृष्ट दलाल जानबूझ कर गरीब किसान मजदूरों को बरगलाते फिरते हैं कि समाजवाद में तुम्हारी सारी चीजें, घर, बिस्तर, कपड़े लत्ते सरकार ले लेगी और तुम एक प्रकार से सरकार के गुलाम बन जाओगे। रोटी होटल में खानी पड़ेगी और घण्टी बजने पर उठना पड़ेगा। डंडा मार-कर तुमसे काम लिया जायेगा और जरा भी विरोध किया तो 'सूट' कर दिया जायेगा आदि आदि। ये दुष्ट यहां तक प्रचार करते हैं कि कोई किसी की मां, बहन, बहू, बेटी नहीं होगी और औरतों का भी राष्ट्रीय-करण कर लिया जायगा। **समाजवाद को इतने गलत रूप में प्रस्तुत करने वाले ये पापात्मा भाग्यवाद के प्रचारकों से कम खतरनाक नहीं हैं और ऐसे नीच व्यक्तियों के साथ कठोरता से निपटना चाहिए।**

रहा सवाल छीनने का। राष्ट्रीयकरण का अर्थ जो व्यक्ति छीनना करता है वह भी उसे गलत रूप में प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीयकरण का वास्तविक अर्थ सम्पत्ति का छीनना नहीं है वरन् सम्पति के वास्तविक स्वामियों को उनका स्वामित्व दिलाना है। इस अर्थ में राष्ट्रीयकरण देश के लोगों को गुलाम नहीं बनाता, मजदूर भी नहीं बनाता वरन् राष्ट्रीयकरण देश की मेहनतकश जनता को देश का और देश के तमाम उत्पादन के साधनों का मालिक बनाता है। पूंजीवादी व्यवस्था में कमेरा तबका तो गुलाम की तरह छटपटाता रह जाता है और लुटेरा तबका मालिक की तरह दनदनाता चला जाता है—इन लुटेरों को समा-प्त करके, गुलामों को मुक्ति दिलाकर उन्हें मालिक बनाना ही वैदिक समाजवाद के राष्ट्रीयकरण का पावन लक्ष्य है।

जहां तक राष्ट्रीयकरण की व्यावहारिकता का सवाल है, अथवा इसके विरोध का सवाल है, वह भी समझने की बात है। कहा गया कि समाज का हर व्यक्ति राष्ट्रीयकरण का जी जान से विरोध करेगा तो राष्ट्रीयकरण होगा कैसे ? प्रश्न होता है कि राष्ट्रीय-करण का हर व्यक्ति विरोध क्यों करेगा ? विरोध तो वही व्यक्ति करेगा जिसके पास शोषण की सम्पत्ति अथवा लूट का माल इकट्ठा हो रहा है—बाकी जिनके पास कुछ भी नहीं अथवा नगण्य साधन हैं, वे क्यों विरोध करेंगे ? यह सबको पता है कि हमारे देश की कुल जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा बेचारा गरीब मजदूर है जिसके पास उत्पादन का

कोई साधन नहीं और उपभोग के साधनों के नाम पर उसके पास केवल इतना ही है जितने से वह कुछ समय जिन्दा रहकर 'मालिक' की गुलामी निभाता रहे। लगभग यही हालत है छोटे तबके के किसान की। वास्तविकता तो यह है कि जिस किसान के पास आज दो चार एकड़ जमीन है, उसकी हालत मजदूर से भी गई गुज़री है—प्रायः ऐसे सभी छोटे किसानों की धरती गिरवी रखी हुई है पति पत्नी और बच्चे सारा कुनबा सुबह से शाम साल भर जानवर की तरह खटता है तो जाकर मुश्किल से सूखे टिक्कड़ों का ढंग बन पाता है और यह भी तब तक जब तक 'इन्द्र देवता' की उस पर कृपा बनी रहे। कुछ इसी ढंग का हाल उन निचले तबके के वेतन भोगी कर्मचारियों अध्यापकों आदि का है जो बुद्धिजीवी का लबादा ओढ़े इस पूंजीवादी व्यवस्था की कमर तोड़ महंगाई और भ्रष्टाचार को सड़ान्ध में कीड़ों की तरह बिलबिला रहे हैं। निचले तबके का व्यापारी जैसे रेहड़ी वाला, खोमचे वाला, चाय और पान की दुकान वाला, नमक तेल धनियां बेचने वाला भी कुल मिलाकर बुरी तरह पिस रहा है। इस तरह सिवाय चन्द धन्ना सेठों के और उनके कुछ मध्यमवर्गीय दलालों के कोई भी आज सुखी नहीं है। पचपन करोड़ की जनता के इस गरीब देश में ७५-७६ परिवार ही ऐसे हैं जिन्होंने वर्तमान शासक वर्ग के साथ सांठ-गांठ करके देश के ५४.६ प्रतिशत उत्पादन के साधनों पर कब्जा किया हुआ है और बाकी की ४५.४ प्रतिशत सम्पत्ति को ५५ करोड़ लोगों में आपस में कुत्तों की तरह झगड़ने के लिए छोड़ रखा है। यदि उत्पादन के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है तो नुकसान किसका होगा? निश्चित रूप से केवल उन मुट्ठी भर लोगों का होगा जो आज कानून और व्यवस्था के नाम पर, 'प्रजातन्त्र' और 'समाजवाद' के नाम पर इस देश की गरीब मेहनतकश जनता का खटमलों की तरह खून चूस-चूस कर मोटे हो रहे हैं। **वैदिक समाजवाद इन खटमलों से अपना खून वापस नहीं मांगता अपितु इन खटमलों को उनके अण्डे समेत नष्ट करना चाहता है, इन लुटेरों को नेस्तनाबूद करना चाहता है, इन नर पिशाचों का, इन दस्युओं का संहार करना चाहता है और एक प्रचण्ड समाजवादी क्रांति के माध्यम से इस देश के आर्यों को, इस राष्ट्र के श्रमिकों को, इस धरती के मेहनतकश बेटों को इस धरती का असली राजा बना कर उनका राज्याभिषेक करना चाहता है।**

एक बात और बता दूं आपको। ये विचार महज ख्याली पुलाव नहीं हैं जिन्हें आप या आपके परवरदिगार वेद और राजधर्म के पन्नों पर दीमक बनकर चाट जायें। क्रांति की आग सुलग चुकी है और बडी तेजी से इसकी चिन्गारियाँ देश के कोने-कोने में बैठे युवा मन मस्तिष्कों को आन्दोलित कर रही हैं अन्दर ही अन्दर धधक रही इस क्रांति की भीषण आग को अब किसी भी कीमत पर बुझाया नहीं जा सकता, दबाया नही जा सकता। उचित अवसर पर उचित नेतृत्व पाकर यह एक प्रचण्ड ज्वालामुखी की तरह विस्फोट करेगा और सदियों से जमा हुए कीचड़ और सड़ी गली व्यवस्था को बाहर फेंक कर इस रत्नगर्भा धरती के अन्तस्तल से एक नये स्वर्णिम युग का सूत्रपात करेगा।

प्रश्न—माफ कीजिएगा मेरा प्रश्न तो जैसा का तैसा है। मैंने जो सवाल पूछा और उसके उत्तर में अभी जो आपने लच्छेदार भाषण दे डाला उससे यहां तक तो मैं सहमत हूँ कि इस देश की बहुसंख्यक जनता इतनी गरीब है कि उसके पास उत्पादन के कोई साधन नहीं हैं और यह वर्ग राष्ट्रीयकरण का विरोध नहीं करेगा। बात भी ठीक है कि जिसके पास खुद कुछ नहीं वह विरोध क्यों करे ? इस वर्ग के लोगों को राष्ट्रीयकरण से कुछ लाभ हो या न हो पर इन्हें इस बात का मजा तो जरूर आयेगा कि अगले का भी छिन गया। पर मेरा सवाल इन लोगों के लिए नहीं था। मैं तो यह जानना चाहूंगा कि जो किसान हजारों साल से चली आ रही परम्परा के अनुसार अपनी धरती के टुकड़े का स्वामी चला आ रहा है वह अचानक मेरे या आपके कहने से अपना स्वामित्व कैसे छोड़ देगा। बेशक उसके पास थोड़ी सी जमीन है और उसका मुश्किल से गुजारा हो रहा है पर वह उसे भी छोड़ना क्यों चाहेगा ? इसी तरह कोई दुकानदार या फैक्ट्री-वाला चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो–क्यों अपनी दुकान या फैक्ट्री का राष्ट्रीय-करण करवायेगा ? टाटा बिड़ला जैसे बड़े पूंजीपति तो आपका विरोध करेंगे ही पर यह छुट भैय्या पूंजीपति किसान या दुकानदार आदि भी जबरदस्त विरोध करेंगे और आप डंडे के बल पर चाहे राष्ट्रीयकरण कर ले जायें पर ये लोग हँसी खुशी राष्ट्रीयकरण को कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। इसका आपके पास क्या उत्तर है ?

उत्तर—उत्तर तो हमारे पास एक ही है—वैदिक समाजवाद ! केवल इसे समझने की जरूरत है। सबसे पहले तो आपका यह भ्रम दूर होना चाहिए कि जमीन पर वैयक्तिक स्वामित्व की प्रथा कोई हजारों

साल पुरानी है। सन् १८०२ से पहले हमारे देश में खेत पर किसान का स्वामित्व नहीं होता था। राजा सारी जमीन का मालिक हुआ करता था और किसान बटाईदार या जोतदार के हिसाब से खेती करता था और फसल का निश्चित हिस्सा राजा को दिया करता था। जमीन को खरीदने बेचने का अधिकार किसानों को नहीं था क्योंकि वे उसके मालिक नहीं थे। अस्तु।

जिस छोटे किसान को बाहर से आप एक उत्पादन के साधन का मालिक या स्वामी समझ रहे हैं, उस किसान के जीवन की गहराइयों में यदि आप झांककर देखें तो आपको पता लगेगा कि यह तथाकथित स्वामी हजारों चिन्ताओं का गुलाम है। बीज की चिन्ता, पानी की चिन्ता, खाद की चिन्ता और फसल की कीमत की चिन्ता के साथ उसे अपने बच्चों की पढ़ाई की चिन्ता सताती है, लड़कों के लिए रोजगार की चिन्ता सताती है, जवान लड़की की शादी और दहेज की चिन्ता, गाहे बगाहे कोई बीमार पड़ गया तो दवाई के लिए पैसों की चिन्ता, आज तो जवान है कमा खा रहे हैं, कल को बूढ़े हो गए तो......? बुढ़ापे की चिन्ता। कहीं किसी बस के नीचे आ गए या और कोई दुर्घटना में हम चल बसे तो हमारे बाद हमारे बीबी और बच्चों का क्या बनेगा? मुहल्ले वाले आयेंगे और रस्म अदायगी के तौर पर दो आँसू बहाकर चले जायेंगे पर अगले दिन कोई झांककर भी नहीं देखेगा कि इनके घर पर चूल्हा जला या नहीं? इस तरह अपने परिवार के अनिश्चित भविष्य की चिन्ता। चिन्ता ही चिन्ता! चारो ओर चिन्ताओं से दबा जा रहा यह औसत किसान, दस्तकार या दुकानदार अथवा इसी हैसियत का कर्मचारी और अध्यापक यौवन की देहलीज पर पांव रखते ही बूढ़ा होने लगता है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं और सर के बाल सफेद होने लगते हैं। जीवन एक नीरस, खोखला और बोझिल श्वासों की धोंकनी बनकर रह जाता है। किसी विशेष कार्य के लिए बिना कर्ज लिए काम नहीं चलता और एक बार कर्ज लेने के बाद कर्ज मुक्त हो पाना बहुत कठिन हो जाता है। कर्ज न चुका पाने की स्थिति में बार-बार जलील होना पड़ता है—आत्मसम्मान कुचला जाता है और मजबूरियों का जहरीला घूंट पी-पीकर वह मौत के करीब पहुँच जाता है। चिता पर तो उसकी लाश एक औपचारिकता के निर्वाह के लिए रखी जाती है—चिन्ताओं की आग में वह पहले ही जल कर राख हो चुका होता है।

वैदिक समाजवाद में ठीक इसके विपरीत एक चिन्ता मुक्त जीवन का वरदान मिलता है। दूसरे शब्दों में उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की मूलभूत चिन्ताओं का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जाता है। उपर्युक्त प्रकार की चिन्ताओं को व्यक्ति के सिर से उतार कर समाज अपने ऊपर ले लेता है। मसलन बच्चों की पढ़ाई का मामला है। पूंजीवादी व्यवस्था में हर मां बाप के ऊपर यह एक बड़ी भारी चिन्ता का बोझ है—इस बोझ को वैदिक समाजवाद दूर कर देता है और राष्ट्र के प्रत्येक बालक बालिका की शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी व्यक्ति के ऊपर न होकर सारे राष्ट्र के ऊपर होती है। बालक की पढ़ाई लिखाई के साथ उसके रोटी, कपड़े, निवास, पुस्तकादि सारी चिन्ताओं से माता पिता मुक्त हो जाते हैं। इस के बाद आती है रोजगार की चिन्ता। आज लाखों पढ़े लिखे युवक बेरोजगारी के शिकार होकर स्वयं भी दुःखी हैं और माता पिता पर भी बोझ बने हुए हैं। वैदिक समाजवाद रोजगार का मौलिक अधिकार प्रदान कर एक बहुत बड़ी चिन्ता से लोगों को मुक्त कर देता है। इसी तरह बुढ़ापे की पेन्शन निश्चित हो जाने से बुढ़ापे की चिन्ताओं से मुक्ति मिलती है। चूंकि दहेज की प्रथा विशुद्ध पूंजीवादी व्यवस्था की उपज है इसलिए वैदिक समाजवाद में इस चिन्ता से भी मुक्ति मिल जाती है। मंहगाई का सवाल ही नहीं उठता और देश के एक कोने से दूसरे कोने में प्रत्येक वस्तु की कीमत एक होती है—आज की तरह लूट नहीं होती कि एक ही बाजार की दो दुकानों में एक ही वस्तु के अलग अलग दाम हैं। ऐसे शोषण मुक्त और चिन्ता मुक्त समाज के स्वस्थ वायुमण्डल में सांस लेने वाला हरेक नागरिक भी स्वस्थ और प्रसन्न होता है और यदि कभी कोई शारीरिक कष्ट हुआ भी तो निःशुल्क चिकित्सा द्वारा उसके स्वास्थ्य की रक्षा हो जाती है। न्याय के क्षेत्र में भी इसी तरह मौलिक परिवर्तन आ जाता है। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में तो यह है कि यदि आपके साथ कोई अन्याय हो तो सबसे पहले थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिये आपको थानेदार की कुछ भेंट पूजा करनी होगी, फिर वकील साहब की फीस भरनी पड़ेगी और तब जाकर न्यायालय में सुन-वाई शुरु होगी—न्याय मिले या न मिले और मिले तो कब तक मिले इसका कुछ पता नहीं—पेशी पर पेशी, तारीख पर तारीख लगती जायगी और सालों साल चलने वाले मुकदमों में पैसा पानी की तरह बहाना पड़ेगा।

गरीब आदमी तो बेचारा अन्याय सहकर रह जाता है क्योंकि अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए उसके पास "पैसा" नहीं है। कई बार तो ऐसा भी होता है यदि हिम्मत करके मुकदमा लड़ता भी है तो जितनी आर्थिक क्षति उसकी उस अन्याय के कारण हुई थी उससे अधिक आर्थिक क्षति उसकी मुकदमेबाजी में हो जाती है। वैदिक समाजवाद न्याय को सर्वथा निःशुल्क कर गरीब किसान मजदूर आदि के लिए भी एक बहुत मौलिक राहत का काम करता है।

इस तरह आप तुलना करके देखें तो पता चलेगा कि एक तरफ तो किसान को दो चार एकड़ जमीन का स्वामित्व है और उसके साथ समस्त चिन्ताओं का उसके सिर पर भारी बोझ है जिसके नीचे वह पिस रहा है, छटपटा रहा है—दूसरी तरफ बिना वैयक्तिक स्वामित्व के यह चिन्तामुक्त निश्चिन्त जीवन है जिसमें वह मस्त होकर गाता है, अपनी प्रतिभा का विकास करता है तथा भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर होता है।

इसके अतिरिक्त छोटे किसानों को इस पूंजीवादी व्यवस्था में बीज के नाम पर, बिजली के नाम पर, खाद और पानी के नाम पर लूटा जाता है। पूंजीपतियों के फार्मों में पैदा होने वाली फसल को सरकार के बैठे पूंजीवादी दलाल 'बीज' की मोहर लगाकर आठ से दश गुनी कीमत पर किसानों को बेचते हैं, सरमायेदारों की फैक्ट्री में बिजली ५ पैसे से यूनिट देते हैं तो किसान के ट्यूबवेल में १५ पैसे यूनिट के हिसाब से देते हैं, रासायनिक खाद की फैक्ट्रियां पूंजीपति लगाते हैं। इसी तरह नहर आदि के पानी में बड़ा जमींदार अधिक हिस्सा ले लेता है और छोटा किसान टापता रह जाता है। उसके खून पसीने की कमाई की कीमत भी सरकार के वे अफसर करते हैं जो राजधानी की एयरकंडीशन्ड कोठियों में बैठकर तय करते हैं जिन्हें यह भी पता नहीं होता कि गेहूँ या धान का पौधा होता है या पेड़।

इसी तरह छोटे छोटे दुकानदारों को भी भ्रष्ट अफसरशाही और दुष्ट नौकरशाही के चंगुल में फंसाकर यह पूंजीवादी व्यवस्था उनके जीवन की खुशियां छीन लेती है। एक-एक दूकानदार पर आठ-२ इन्सपेक्टर, कोई इन्कमटैक्स इन्सपेक्टर तो कोई सेल्स टैक्स इन्सपेक्टर तो

और कोई माप तोल इन्सपेक्टर। इन इन्सपेक्टरों की आवभगत में ही छोटे दुकानदार का कचूमर निकलने लगता है। छोटे दस्तकार, कपड़ा बुनने वाले जुलाहे या जूता बनाने वाले चमार या लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई मिट्टी का काम करने वाले कुम्हार आदि की भी हालत बेहद खस्ता हो रही है— बड़े-बड़े पूंजीपतियों की बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों में बन रहे कपड़े, जूते, बर्तन आदि का वे न उत्पादन क्षमता में मुकाबला कर पाते और न ही उनके सस्ती कीमतों का ही मुकाबला कर पाते। अपने उखड़ते हुए उद्योग और लड़खड़ाते परिवार को देखकर बेचारे मन मसोस कर और आंसू के घूँट पीकर रह जाते हैं।

इस तरह यदि वास्तविकता को देखा जाये यो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि छोटा किसान, छोटा दस्तकार और छोटा दुकानदार अपने लिये बेशक कुछ साधनों का स्वामी है पर इस स्वामित्व की एवज में जो चिन्ताओं का पहाड़ वह ढो रहा है, जिस अनिश्चतता और शोषण के षड्यंत्र का वह शिकार हो रहा है—उनसे वह मुक्त होना चाहता है, छुटकारा पाना चाहता है। जब वह दुःखों का मारा वैदिक समाजवाद की ओर आकर्षित होता है तो बड़े-बड़े पूंजीपति और उनके दलाल इन्हें डराते हैं और बहकाते हैं और कहते हैं कि इस समाजवाद में तुम्हारी सम्पत्ति छीन ली जायगी और तुम्हें गुलाम बना लिया जायगा। अपने लूट की सम्पत्ति को समाजवादी क्रांति से बचाने के लिए ये धूर्त छोटे किसानों और दस्तकारों को वैदिक समाजवाद के विरोध में खड़ा करना चाहते हैं। जरूरत इस बात की है कि हमें आगे बढ़कर अपने गरीब और शोषित भाइयों को समाजवाद के सभी पहलुओं से परिचित करायें और उन्हें इस सच्चाई का एहसास करायें कि वैदिक समाजवाद में उनका कुछ भी नहीं छीना जायगा। व्यक्तिगत के बदले सामूहिक या राष्ट्रीय स्वामित्व स्वीकार करने से उन्हें वह बहुत कुछ मिल सकेगा जो वे इस पूंजीवादी व्यवस्था में कभी हासिल नहीं कर सकते।

पिछले एक साल का हमारा यह अनुभव बताता है कि इन पूंजीवादी दलालों के सारे मिथ्या प्रचार के बावजूद भी जब हम अपने छोटे किसान और दस्तकार भाइयों को यह समझाते हैं कि इस नई व्यवस्था से उन्हें क्या मिलेगा, अपने उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व

के स्थान पर सामूहिक स्वामित्व मान लेने से उनके खेत आदि समुद्र में नहीं फेंक दिये जावेंगे बल्कि ये सारे साधन यहीं रहेंगे और उन्हें अधिकार होगा काम का और काम के पूरे दाम का। जब उनकी समझ में यह आ जाता है कि उनके छोटे-छोटे उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण के साथ साथ उनकी बड़ी चिन्ताओं का भी राष्ट्रीयकरण हो जायगा, उनके फिक्र और फाकों का भी राष्ट्रीयकरण हो जायगा, और वे एक चिन्तामुक्त, एक शोषणमुक्त, नये युग में, नये जीवन में प्रवेश करेंगे तो उनका हृदय उल्लास और उत्साह से भर जाता है और वे बड़ी प्रसन्नता से अपने साधनों पर इस पूँजीवादी स्वामित्व के खोखले अधिकार को छोड़कर अन्य श्रमजीवियों एवं बुद्धिजीवियों के साथ इस महान समाजवादी क्रांति की सफलता के लिये कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के लिए तैयार हो जाते हैं।

वैदिक समाजवाद और कम्यूनिज्म

प्रश्न—वैदिक समाजवाद से सम्बन्धित अभी तक के आपके लेखों को पढ़कर बहुत संतोष हुआ पर एक बात समझ में नहीं आई कि जिस वैदिक समाजवाद की आप इतनी खुलकर व्याख्या कर रहे हैं उसमें और रूस आदि देशों में जो समाजवाद प्रचलित है उन दोनों में क्या मौलिक अन्तर है? क्योंकि अभी तक आपने उन्हीं बातों का समर्थन किया है जो रूस आदि पाश्चात्य समाजवादी देशों में लागू हैं—यथा उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण, शिक्षा को पूर्ण निःशुल्क एवं अनिवार्य कर सब को रोजगार का मौलिक अधिकार प्रदान करना, न्याय और चिकित्सा आदि को भी निःशुल्क करके बुढ़ापे की पेन्शन निश्चित करना। ये सभी बातें यदि वैदिक समाजवाद में हैं तो कार्लमार्क्स और लेनिन के साहित्य में भी है। उन्होंने तो इसे क्रियान्वित करके दिखा दिया है जबकि आपके पास यह केवल विचार मात्र है। दुनियां इन विचारों को कम्यूनिज्म के नाम से जानती है—आपको भी चाहिए कि यह "वैदिक" का अड़ंगा न लगा कर सीधे रास्ते से कम्यूनिज्म का प्रचार करें। और बुरा न माने तो एक बात और कहूंगा कि यह आर्यसभा न्यारी बनाने के बदले सीधे किसी कम्युनिस्ट पार्टी में भरती होकर काम करें तो अच्छा होगा– इससे आपको भी खुलकर काम करने का मजा आएगा और समाजवाद भी जल्दी आयेगा।

उत्तर—आपके इन "बिन मांगे मोती मिले" के समान कीमती सुझावों के लिए आपका बहुत धन्यवाद! यदि सैद्धांतिक दृष्टि से वैदिक समाजवाद और कम्यूनिज्म में कोई मौलिक अंतर न होता तो आपके आदेश के पालन में हमें बड़ी प्रसन्नता होती। पर सैद्धांतिक दृष्टि से दोनों विचार धाराओं में इतना मौलिक अन्तर है कि राष्ट्रीयकरण आदि बातों में समानता नजर आते हुए भी ये दोनों स्पष्ट रूप से दो अलग-अलग जीवन दर्शन (Philosophy of Life) का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कम्यूनिज्म का आधुनिक सिद्धांत कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) पर टिका हुआ है। मार्क्स ने हीगल के आदर्शवाद (Idealism) से द्वन्द्व का सिद्धांत लेकर उसे भौतिकवाद के साथ प्रयोग किया और सिद्ध किया कि संसार का समस्त

व्यापार भौतिक शक्तियों के इसी द्वन्द्व पर आधारित है। परिवर्तन की प्रक्रिया में थीसिस और एन्टीथीसिस के संघर्ष से एक सिन्थेसिस पैदा होता है और कालान्तर में यह सिन्थेसिस ही थीसिस बन कर खड़ा हो जाता है। इस तरह मार्क्स ने भौतिकवादी दृष्टिकोण को केवल प्रकृति पर ही नहीं लागू किया बल्कि इसी दृष्टिकोण से इतिहास का भी अध्ययन और विश्लेषण किया। इतिहास और मानव समाज पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की दृष्टि से विचार करते हुए मार्क्स ने यह नतीजा निकाला कि सभी विचारधाराओं और उसके विभिन्न प्रकार की क्रिया कलापों एवं संगठनों (राजनीतिक सांस्कृतिक आदि) का निर्माण आर्थिक ढांचे की बुनियाद पर होता है। इस तरह मार्क्स का सारा आर्थिक चिन्तन विशुद्ध भौतिकवादी दर्शन पर आधारित है। मार्क्स केवल प्रकृति (Matter) के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और अर्थ को ही जीवन व्यापार का मूल आधार मानते हैं।

इसके विपरीत वैदिक समाजवाद प्रकृति के साथ साथ जीवात्मा एवं परमात्मा के पृथक एवं स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करता है। वेद के इस दर्शन का नाम त्रैतवाद है। त्रैतवाद के अनुसार केवल प्रकृति अथवा भौतिकवाद ही मात्र सत्य नहीं हैं वरन् जीवात्मा और परमात्मा भी सत्य हैं—तीनों सत्तायें अनादि और अनंत हैं। प्रकृति में जहां केवल एक गुण सत् है, वहां जीवात्मा में सत् और चित् नामक दो गुण हैं और परमात्मा में सत्, चित् और आनन्द नामक तीन गुण हैं—वह सच्चिदानन्द है। जीवात्मा को इसके अतिरिक्त गुण 'आनन्द' की प्रप्ति कराना ही समस्त सृष्टि का उद्देश्य है—इस आनन्द की प्राप्ति जीवात्मा को मोक्ष की अवस्था में ही हो सकती है। इस मोक्ष की दिशा में प्रवृत होने के लिए प्रकृति (Matter) एक साधन का कार्य करती है पर साधन को ही यदि जीवात्मा साध्य बना ले तो वह अपने चरम लक्ष्य से भटक जाता है।

आदि शंकराचार्य ने ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या मानकर एक द्वंद्वात्मक धर्मवाद, (Dialectical Spiritualism) को जन्म दिया। उनकी नजर में समस्त चराचर जगत का व्यापार ब्रह्म ही ब्रह्म के रूप में दिखाई पड़ा। इसके विपरीत यूरोप के प्रकाण्ड विद्वान फ्रायड ने केवल "काम" के अस्तित्व को स्वीकार किया और संसार के सारे व्यापार को कामजन्य बताया—उनकी दृष्टि में माँ द्वारा गोद में खेल रहे अपने

बच्चे के प्रति स्नेह या प्यार वात्सल्य के रूप में नहीं था वरन् काम वासना (Sex Urge) का ही एक रूप था; उनका सिद्धांत एक प्रकार से द्वन्द्वात्मक कामवाद (Dialectical Sexualism) था । इन दोनों के विपरीत मार्क्स ने सब कुछ "अर्थ" ही मानकर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) की स्थापना की; मार्क्स की दृष्टि में संसार का सारा व्यापार आर्थिक सम्बन्धों पर ही टिका हुआ है । पति और पत्नी का नैसर्गिक "दाम्पत्य प्रेम" भी मार्क्स की नजर में एक विशुद्ध आर्थिक सम्बन्ध है । महर्षि दयानन्द ने वैदिक त्रैतवाद के आधार पर धर्म, अर्थ अथवा काम को ठुकराया नहीं वरन् उन्होंने धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का सुन्दर समन्वय करते हुए उन्हें उनके लक्ष्य मोक्ष के साथ पिरोकर "पुरुषार्थ चतुष्टय" की स्थापना की ।

वैदिक त्रैतवाद का यह दर्शन मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन से भिन्न होने के कारण वैदिक समाजवाद और कम्यूनिज्म के बीच एक मौलिक सैद्धांतिक भेद खड़ा होता है और वह यह है कि कम्यूनिज्म का आधार जहां केवल भौतिकवाद है वहां वैदिक समाजवाद के आधार में भौतिकवाद के साथ साथ आध्यात्मवाद भी है ।

रोटी, कपड़ा, मकान आदि की समस्याओं के समाधान से मनुष्य का भौतिकवादी पक्ष तो सुधर जाता है पर आध्यात्मवादी पक्ष पूर्ण नहीं हो पाता । कहावत है कि मनुष्य केवल रोटी के लिए जिन्दा नहीं रहता–(Man does not live by bread alone) भौतिक उन्नति उसके लिए साधन मात्र (Means) है—साध्य (End) है आध्यात्मिक उन्नति । इस साध्य की प्राप्ति के लिए उसे रोटी, कपड़ा और मकान आदि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इस अष्टांग योग की भी सिद्धि करनी पड़ती है । वैदिक समाजवाद की यही विशेषता है कि वह मनुष्य के सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उसके शारीरिक एवं आत्मिक विकास का समुचित अवसर प्रदान करता है जबकि कम्यूनिज्म उसके केवल भौतिक विकास को ही एकाङ्गी रूप में प्रस्तुत करता है ।

प्रश्न—आपने अपने वैदिक समाजवाद की विशेषता प्रकट करने के लिए व्यर्थ में इस आत्मा परमात्मा आदि के बखेड़े को खड़ा कर दिया । आज तक

गरीब को उसका हक दिलाने में ये आत्मा परमात्मा के ठेकेदार ही सबसे ज्यादा रुकावट बनते रहे हैं—इसलिये मार्क्स ने ठीक ही कहा है कि धर्म जीवन के लिए अफीम है और परमात्मा नाम की कोई हस्ती नहीं है। मेरी समझ में तो आप जैसे समझदार व्यक्ति को भी इस आध्यात्मवाद के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए और भौतिकवाद को ही एक मात्र सच्चाई मानकर लड़ाई लड़नी चाहिए। और यदि यह मान भी लिया जाय कि आत्मा और परमात्मा भी हैं तो उनका इस लड़ाई से क्या वास्ता ? मोक्ष आदि तो नितान्त व्यक्तिगत मामले हैं और उसकी साधना में राज्य एवं समाज को कोई दखल नहीं देना चाहिए।

उत्तर—आत्मा और परमात्मा बखेड़ा नहीं है वरन् वास्तविकताएँ हैं। इनका अस्तित्व वैदिक समाजवाद की विशेषता दिखाने के लिए नहीं है, वरन् इस सत्य को स्वीकार करने के ही लिए है। इस सारी सृष्टि अथवा जगत के तीन कारण हैं—पहला निमित्त कारण (परमात्मा), दूसरा उपादान कारण (प्रकृति) और तीसरा साधारण कारण (जीवात्मा)। इनमें से किसी एक कारण के अभाव में सृष्टि का औचित्य नष्ट हो जाता है। विशेष जानकारी के लिए महर्षि दयानन्द विरचित सत्यार्थ प्रकाश का सातवां और आठवां समुल्लास पढ़ें।

आपका आरोप है कि आज तक गरीब को उसका हक दिलाने में ये आत्मा परमात्मा के ठेकेदार ही सबसे ज्यादा रुकावट बनते रहे हैं। आपका ऐसा कहना एक अर्थ में उचित है क्योंकि आत्मा परमात्मा का विषय कुछ कठिन होने से कुछ स्वार्थी ठगों और पाखण्डियों ने आत्मा परमात्मा का हव्वा खड़ा करके भोली भाली जनता को बहुत लूटा और खसोटा। गरीबों को शोषकों के खिलाफ संघर्ष के लिए आह्वान करने के बदले इन तथाकथित धर्म के ठेकेदारों ने भाग्यवाद और काल्पनिक स्वर्ग नरक का ऐसा प्रपंच रचा कि सदियों से शोषित और दलित मानवता पिसती चली गई। धर्म के नाम पर खेले जा रहे इस पाखण्ड को देखकर ही संभवतः मार्क्स जैसे मनीषी ने धर्म को अफीम की संज्ञा दे दी परन्तु धर्म और पाखण्ड में अन्तर करने का उन्हें अवकाश नहीं था। इसके विपरीत महर्षि दयानन्द ने भी धर्म के नाम पर पाखण्ड का बीभत्स रूप देखा था पर कभी उतावले पन में आकर धर्म को अफीम नहीं बताया। वास्तविक धर्म और मतमतान्तर, मजहब, रिलीजन, सम्प्रदाय आदि के बीच अन्तर करते हुए उन्होंने वेद (सत्य ज्ञान को ही

मानव मात्र का धर्म बताया और सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर घोषित किया)। इसी तरह दुनियां में और भी महापुरुष हुए हैं जिन्होंने आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकारते हुए गरीब और शोषित मानवता के उत्थान के लिए अपना जीवन खपा दिया है।

यदि आपके कथनानुसार भौतिकवाद को ही एकमात्र सच्चाई मानकर लड़ाई लड़ी जा सकती है तो प्रश्न होगा कि मार्क्स और लेनिन को क्या जरूरत पड़ी थी कि वे अपने तमाम भौतिक एवं सांसारिक सुखों को लात मारकर जीवन की अन्तिम सांस तक संघर्ष करते रहे ? सच्चाई तो यह है कि विशुद्ध भौतिकवादी व्यक्ति भोगवाद में प्रवृत्त होकर दूसरों का शोषण करता है—वह परोपकार की भावना से प्रेरित होकर अपने आपको क्रांति की भट्ठी में नहीं झोंक सकता।

आपका यह कहना भी गलत है कि मोक्ष नितान्त एक व्यक्तिगत मामला है—राज्य और समाज को इसमें दखल नहीं देना चाहिए। मोक्ष की साधना के लिए एक व्यक्ति को जिस प्रकार के वातावरण, शिक्षा, दीक्षा, भोजन छादन तथा अन्य सुविधाओं की आवश्यकता है वह बिना राज्य और समाज के सहयोग के कभी पूरी हो नहीं सकती। निश्चित रूप से एक भौतिकवादी जीवन दर्शन को मानने वाले राज्य में समाज की जो संरचना होगी वह उस समाज की संरचना से भिन्न होगी जिसके राज्य का जीवन दर्शन भौतिकवाद को साधन मानकर आध्यात्म-वाद के लक्ष्य की प्राप्ति करना है।

भौतिकवादी जीवनदर्शन का समाज एक बार जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद निश्चित रूप से भोगवाद की ओर उन्मुख होगा—वहां आवश्यकतायें Needs का रूप छोड़कर Greeds का रूप धारण करेंगी और तृष्णा की आंधी में बहकर समाज का समर्थ एवं नेतृत्व वर्ग राष्ट्र को समाजवाद से पूंजीवाद की ओर, समष्टिवाद से स्वार्थवाद की ओर घसीट ले जायगा। आज रूस के समाजवाद में कुछ - कुछ इस प्रकार की प्रवृत्तियों के उभरने के आसार प्रकट हो रहे हैं। इसके विपरीत त्रैतवादी जीवन दर्शन पर आधारित समाज एक बार जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद त्यागवाद और आध्यात्म-

वाद की ओर झुकेगा—वहां Needs का रूप Greeds में न बदलकर Selfless deeds में परिवर्तित होगा और मानव अपने सर्वांङ्गीण विकास के समुचित अवसर प्राप्तकर एक स्वर्गीय सुख की अनुभूति करेगा।

प्रश्न—यह तो खूब रही—हम तो समझ रहे थे कि आपके वैदिक समाजवाद और कम्यूनिज्म में कोई फर्क नहीं है और अब आपने जो विचार रखे हैं उनसे लगता है कि आपका वैदिक समाजवाद आध्यात्मवादी होने के कारण भौतिकवादी कम्यूनिज्म से बिल्कुल विपरीत है और इसलिए यह सिद्ध हुआ कि आप कम्यूनिज्म के कट्टर विरोधी है।

उत्तर—आपका ऐसा समझना भी उचित नहीं। वैदिक समाजवाद में आध्यात्मवाद की विशेषता अवश्य है पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि इसमें भौतिकवाद का पहलू नहीं है। बल्कि भौतिकवाद को प्राथमिकता दी गई है। जीवात्मा बिना शरीर के कोई कर्म नहीं कर सकता और बिना कर्म के उसे कोई फल नहीं मिल सकता। वेद इस लिए भौतिक उन्नति पर पूरा बल देता है। जहां तक कम्यूनिज्म का सवाल है—इसके सिद्धान्तों ने आज सारी दुनियां के मेहनतकश लोगों में एक नई चेतना का संचार किया है और रूस चीन आदि देशों में प्राप्त सफलता के आधार पर समाजवादी विचारों की व्यावहारिकता काफी हद तक सिद्ध हो चुकी है। इन देशों की क्रांति की कहानियां आज अन्य देशों के युवकों में भी प्रेरणा का कार्य कर रही हैं। कम्यूनिज्म और वैदिक समाजवाद परस्पर विरोधी नहीं हैं–वरन् एक अर्थ में परस्पर पूरक हैं। कम्यूनिज्म के साथ जुड़ा हुआ क्रांति का इतिहास वैदिक समाजवाद की अधिकांश मान्यताओं को आदर्शवाद के धरातल से उठाकर यथार्थवाद के धरातल पर लाकर खड़ा करता है–दूसरी ओर वैदिक समाज में निहित भौतिकवाद और वैज्ञानिक आध्यात्मवाद का समन्वय भौतिकवादी कम्यूनिज्म को एक नया आयाम प्रदान करता है। वैदिक समाजवाद का यह आध्यात्मिक पहलू समष्टि के हित में व्यक्ति को नष्ट नहीं करने देता वरन् उसकी वैय्यक्तिक स्वतन्त्रता एवं वैचारिक प्रतिभा पर कम से कम अंकुश का हामी है। राजतन्त्र की निरंकुश तानाशाही समाजवादी राज्य की स्थापना में आवश्यक हो सकती है पर मानवीय मर्यादाओं की रक्षा के बिना इसका स्वरूप घिनौना भी हो सकता है। वैदिक समाजवाद मनुष्य को मशीन बनाने के बदले उसे उदात्त मानवीय गुणों में अलंकृत

करना चाहता है जिनकी वजह से मनुष्य देवत्व की कोटि में पहुँच सके।

ऐसे तो वेद सार्वभौम है और किसी देश विशेष से उसका कोई सम्बन्ध नहीं पर आर्यावर्त की यह पावन धरती सहस्राब्दियों से वैदिक संस्कृति की उपासक रही। इसलिए इस राष्ट्र के नवयुवकों के लिए तो यह विशेष गौरव एवं स्पर्धा की बात है कि वे अपनी भाषा और भावनाओं में तरंगित हो रही वैदिक समाजवाद की मान्यताओं को जनमानस तक पहुंचाकर उन्हें संघर्ष और संग्राम के लिए आन्दोलित करें। संस्कृति एवं समाजवाद का जो अटूट सम्बन्ध है उसे देखते हुए यह पूरी निष्ठा के साथ कहा जा सकता है कि भारत की इस भूमि पर समाजवाद के अभूतपूर्व सफलता की जो संभावनायें हैं वे अन्य किसी विचार धारा के लिए नहीं हैं।

वैदिक समाजवाद और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता-1

प्रश्न—मनुष्य जीवन की सार्थकता उसके मनन की शक्ति में है और मनन किए विचारों की अभिव्यक्ति में है। यदि मनुष्य को स्वतन्त्र होकर सोचने विचारने और लिखने बोलने की सुविधा न रही तो वह मनुष्य होकर भी एक पशु के समान हो जाएगा अथवा एक मशीन के पुर्जे के समान जड़ हो जाएगा। इसलिए आप अपने वैदिक समाज को मनुष्यों का समाज बनाना चाहते हैं या पशुओं का समाज ?

उत्तर—पशुओं का समाज तो होता नहीं उनका तो केवल समज होता है—महज एक भीड़ होती है। समाज कहते हैं विचार पूर्वक संगठित समूह को और यह मनुष्यों का ही सम्भव है, पशुओं का नहीं। पर आप छोड़िये इन बातों को, अपना सवाल सीधा रखिये।

प्रश्न—रखा तो हमने सीधा ही था पर आपने शब्दजाल में उलझा दिया। खैर हमारे पूछने का मतलब यह है कि जब वैदिक समाजवाद में समस्त उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण हो जायगा और राष्ट्र की ओर से इन साधनों के प्रबन्ध संचालन आदि के लिए एक सरकार नियुक्त होगी तो बाकी का सारा देश तो सरकार नामक उन मुट्ठी भर लोगों का गुलाम हो जायगी। उसी सरकार के हाथों में सारी शक्ति केन्द्रित होगी, सारे स्कूल कॉलेज उसके होंगे, सारे सिनेमा और रेडियो उसके होंगे, समाचार पत्र और पत्रिकाएँ भी सरकारी होंगी। सरकार जैसा चाहेगी वैसा ही जनता को सोचने के लिए मजबूर करेगी। ऐसी स्थिति में सरकार के खिलाफ कोई सोचने की हिम्मत नहीं करेगा और करेगा भी तो अपने आप सोचकर मन मसोस कर रह जाएगा क्योंकि उन विचारों को फैलाने का उसके पास कोई प्रभावशाली साधन नहीं होगा। मुंह से बोलकर वह अत्यन्त सीमित प्रचार कर सकेगा और वह भी तभी तक जब तक सरकार नाम की "सर्वशक्तिमान सत्ता" उसको विद्रोही जानकर उसका मुंह बन्द करने के लिए उसे साइबेरिया जैसे लेबर कैम्प में न भेज दे। यही तो हाल है आपके रूस का और आपके चीन का और समाजवादी देशों का। वहां के करोड़ों लोगों को वहां

की सरकार ने गुलाम बना रखा है। जो सरकार का रेडियो कह दे उसे ही जनता "सत्य वचन महाराज" कह कर स्वीकार कर लेती है। न कोई विरोधी पार्टी है वहां, न कोई सरकार विरोधी अखबार है वहां, न कोई लेखक, न कोई कवि। इक्के दुक्के यदि कोई विरोध करता भी है तो उसकी ऐसी बुरी गत बनाते हैं वहां कि सरकार कि बस पूछो मत। सारा देश जानवरों का बना दिया। सरकार यदि रात को सूरज और दिन में तारे दिखाए तो जनता को देखना पड़ता है और न भी दिखता हो तो सरकार की हाँ में हां भरनी पड़ती है। स्तालिन ने बेरिया के साथ क्या किया ? और तो और उदारवादी कहलाने वाले ख्रुश्चेव ने 'डा० जिवागो' के लेखक बोरिस पेस्तरनाक के साथ क्या किया ? और उसी ख्रुश्चेव को जब ब्रेजनेव कोसिगिन आदि के साथ मिलकर गद्दी से उतार दिया तो बाकी की उम्र छटपटाता रहा, किसी ने पानी तक को नहीं पूछा। इधर चीन में माओ ने क्या…… ?

उत्तर—आप रूस और चीन पर भाषण देकर क्या कहना चाहते हैं। आप हमारे सिद्धांत पर……

प्रश्नकर्त्ता—(बीच में काट कर) आप हमें बात पूरी कर लेने दीजिए। यह ठीक है कि हमारा सवाल लम्बा है पर मामला भी टेढ़ा है। अभी जोश में आकर आपके आर्य राष्ट्र और वैदिक समाजवाद आदि लच्छेदार बातों में यदि हम आ गये तो कल को हमारा भी वही हाल होना है। एक बार उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण होते ही सारी स्वतन्त्रता समाप्त हो जायगी। हाँ तो मैं कह रहा था कि चीन में माओ ने क्या किया ? जरा सा मतभेद होने पर लिउ शाओ ची को मरवा दिया और लिन पियाओ जैसे जबरदस्त महत्वपूर्ण व्यक्ति को भी ऐसे खत्म कर दिया कि आज तक उसकी लाश का भी पता नहीं चला। सुनते हैं कि आज तक चीन की जनता को यह नहीं पता है कि अमेरिका ने चांद पर मानव उतार दिये क्योंकि वहां की सरकार नहीं चाहती कि चीनी जनता अपने आपको किसी से पीछे अनुभव करे। और यही नहीं २५ साल तक वहां "जनता की सरकार" अपनी जनता को बताती रही कि धरती पर उनका सबसे बड़ा दुश्मन अमेरिका है और चीन का बच्चा-बच्चा अमेरिका का नाम सुनकर दांत कटकटाता था पर जब एक दिन अचानक वहां जनता की सरकार ने (अर्थात् माओ और चाओ ने) निक्सन के साथ मुस्कराकर मैत्री के जाम खनका दिये तो रातों रात वही अमेरिका चीन का सबसे बड़ा दोस्त बन गया। ८० करोड़ चीनियों में से किसी चीनी ने उठकर विरोध करने की जुर्रत नहीं

की क्योंकि यह चैयरमैन माओ का फरमान था। इसे कहते हैं गुलामी! इसे कहते हैं दासता!! इसे कहते हैं पशुता!!! यह ठीक है कि हमें रोटी चाहिए, कपड़ा और मकान चाहिए इसलिए हमें समाजवाद प्यारा लग सकता है, भूखों और नंगों को शोषण की समाप्ति और समानता के नारे कर्णप्रिय हो सकते हैं पर वास्तव में यदि गम्भीरता से सोचा जाए तो ऐसी गुलामी की जिन्दगी से तो भूखा नंगा रह लेना बेहतर है। संक्षेप में हमारा यही कहना है कि समाजवाद बिना उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण के सम्भव नहीं और ऐसे समाजवाद के हजार अन्य लाभ होंगे पर अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाएगी और चूंकि यह विचार स्वातन्त्र्य इन्सानियत की, मनुष्यत्व की मूल कसौटी है, इसलिए इन्सानियत को खोकर, इन्सान को जिन्दा देखना हमें स्वीकार नहीं हैं।

उत्तर—आपकी इस बात से हम पूरी तरह सहमत हैं कि विचार स्वतन्त्रता मनुष्यत्व की मूल कसौटी है और यह भी ठीक है कि इन्सानियत को खोकर इन्सान को जिन्दा रखना एक वाहियात के साथ-साथ खतरनाक कोशिश है पर आपकी इस बात में अधिक वजन नहीं है कि उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण से विचार स्वातन्त्र्य नष्ट हो जाएगा। आपने रूस और चीन के बड़े लम्बे चौड़े उदाहरण देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की है की आज इन समाजवादी देशों में इन्सान की जगह हैवान या जानवर बसते हैं। हो सकता है कि आपकी यह जानकारी सच हो, पर यह समझ में नहीं आता कि यदि ये बात सच भी हों तो हमने कब रूस अथवा चीन को अपना आदर्श मान लिया है। हमने तो आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि रूस या चीन के समाजवाद (अर्थात् मार्क्सवाद) और वैदिक समाजवाद में मौलिक अन्तर है। मार्क्सवाद की आधारशिला विशुद्ध भौतिकवाद पर है जबकि वैदिक समाजवाद त्रैतवाद (प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा) पर आधारित है। जिनकी नजरों में इन्सान केवल प्राकृतिक पदार्थ है उनके लिए विचार स्वातन्त्र्य जैसा इन्सानियत का अहम् सवाल शायद अधिक मायने न रखता हो, पर जिनकी संस्कृति का मूल आधार प्रकृति न हो कर आत्मा है उनके लिए विचार स्वातन्त्र्य का दर्जा रोटी, कपड़ा, मकान जैसे भौतिक आवश्यकताओं के बराबर ही नहीं वरन् उनसे ऊंचा है। इसलिए वेद जहां शोषण का प्रबल विरोधी है वहा मानसिक दासता का भी प्रचण्ड विरोधी है। वेद एक व्यक्ति अथवा एक गुट के विचारों

को सारे समाज पर थोपे जाने को हर्गिज बर्दास्त नहीं करता। वेद के अनुसार कोई कितना ही बड़ा विद्वान हो अथवा कितना ही बड़ा बलवान हो पर उसे अपने विचार दूसरों पर थोपने का कोई अधिकार नहीं है। समाज के हर व्यक्ति को चाहे वह पढ़ा लिखा हो या अनपढ़; शासक की गद्दी पर बैठा हुआ हो अथवा झाड़ू लगाने वाला, सबको वेद समान रूप से सोचने का और विचार स्वातन्त्रय का अधिकार देता है और यह स्पष्ट आदेश करता है कि समाज में सभी निर्णय सबकी सलाह से लिये जायें, सबको सोचने विचारने लिखने बोलने की पूर्ण आजादी हो और सब मिलकर ही समाज और राज्य का काम करें और कोई अवस्था न आने दें कि जिसमें इस स्वतन्त्रता में बाधा डालकर कुछ नेता अपने विचार सारे समाज पर थोपते चले जायें। उदाहरण के लिए ऋग्वेद का मन्त्र है।

संगच्छध्वं संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

[ऋ० १०।१९१।२]

अर्थ—(सब प्रकार के ऐश्वर्य के अभिलाषो) मनुष्यों! तुम परस्पर मिल कर चलो, मिल कर बातचीत करो, ज्ञानी बनकर तुम अपने मनों को भी एक बनाओ जैसे कि तुम से पूर्व विद्वान देव पुरुष सम्यक् ज्ञानवान और एक मति वाले हो कर अपना भाग प्राप्त करते रहे।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

[ऋ० १०।१९१।३]

अर्थ—तुम्हारे गुप्त विषयों के गम्भीर विचार मिल कर हो, विचार के लिए तुम्हारी सभाएं एक जैसी हो जिनमें तुम सब मिलकर बैठ सको, तुम्हारा मनन मिलकर हो, निश्चय मिलकर हो। मैं तुम्हें मिलकर विचार करने का उपदेश देता हूँ और तुम सब पारस्परिक उपकार के लिए समान रूप से भोग पदार्थों को धर्म और न्याय की रीति से समिति के निश्चय से प्राप्त करो, यह आदेश दे रहा हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥(ऋ० १०।१९१।४)

अर्थ : तुम्हारे संकल्प और प्रयत्न मिलकर हों, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे अन्तःकरण मिले रहें, जिसमें परस्पर सहायता से तुम्हारी भरपूर उन्नति हो।

इस तरह वेद विचार अंकुश के बदले विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रबल पक्षपाती है। मानव समाज और राज्य जैसे विशाल संगठन के मूल मंत्रों के रूप में वेद ने मानवीय संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर हमारे हाथों में दे रखी है, जिसके संरक्षण और संवर्धन में हमें प्राणपण से जुटना चाहिए। जो वेद हमें उत्पादन के साधनों पर वैयक्तिक स्वामित्व की समाप्ति का आदेश देते हैं वही वेद हमें व्यक्ति के व्यक्तित्व को, उसके चरित्र की गरिमा को, उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता को निर्वाध रूप से अभिव्यक्ति का अवसर भी प्रदान करते हैं। इन दोनों में परस्पर विरोधाभास नहीं वरन् यही सर्वोत्कृष्ट समन्वय है। बल्कि वेद के अनुसार वास्तविक विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तो मिलेगी ही उस दिन जब उत्पादन के साधनों पर वैयक्तिक स्वामित्व समाप्त कर वैदिक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना होगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति के रहते हुए पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत औसत नागरिक के लिए विचार स्वातन्त्र्य की वात करना एक आत्म प्रवंचना है, एक धोखा है। यह बात आपको बड़ी अटपटी लग सकती है, क्योंकि पूंजीवादी प्रोपेगंडा ने अपनी व्यवस्था को बरकरार रखने के लिए गरीबों के दिल दिमाग में कई प्रकार के कीड़े पैदा कर दिये हैं। इन कीड़ों की मदद से पूँजीपति एक ओर जहां गरीबों का खून चूसता है वहां दूसरी ओर उस गरीब की सहानुभूति भी प्राप्त करता रहता है। इनमें से एक जहरीला कीड़ा है भाग्यवाद का! गरीब मेहनतकश किसान और मजदूर जिन्दगी भर खून पसीना एक करने के बाद भी अपनी झोंपड़ी में तड़पता रह जाता है, उसकी आंखें धंसती चली जाती हैं, गाल पिचकते चले जाते हैं और पसलियां उभरती चली जाती हैं। उधर उसके सामने शोषक अपनी तोंद फुलाये मलमल के कुर्ते में इत्र लगाये एयरकंडीशन्ड कोठियों में ऐश करता है। पर गरीब

अपनी दयनीय स्थिति के लिए पूंजीपति को जिम्मेदार न ठहरा कर अपने भाग्य को कोसता रहता है, अपनी क़िस्मत को रोना रहता है। क्योंकि कुछ पूंजीपतियों के दलाल गरीबों के दिमाग में यह कीड़ा डाल जाते हैं कि अमीरी गरीबी सब पिछले जन्म के कर्मों का खेल है, भाग्य की रेखा अमिट है, यह ब्रह्मा का अभिलेख है, आदि-आदि ! इसी तरह का मत और कीड़ा फैलाया जाता है कि बिना वैयक्तिक स्वामित्व के काम करने की प्रेरणा (Incentive) समाप्त हो जायगी और सारी सम्पत्ति चौपट हो जाएगी आदि आदि। इस प्रकार के कई कीड़ों का इलाज हम अपने पिछले लेखों में कर रहे हैं। अब एक नया कीड़ा चल रहा है कि वैदिक समाजवाद आने से लोग गुलाम हो जायेंगे और जानवर बन जायेंगे और राष्ट्रीयकरण से विचार स्वातन्त्र्य नष्ट हो जायगा, इन्सानियत मर जाएगी जैसा कि रूस में हो गया और चीन में हो रहा है... .....। यदि दुराग्रह को छोड़कर निर्णय किया जाय तो इस कीड़े का भी शीघ्र इलाज हो सकता है। रूस और चीन से हमें कुछ लेना देना नहीं है। वे एक भौतिकवादी एवं सामूहिक भोगवादी संस्कृति की उपासना में लगे हैं, हमारा उनसे मौलिक मतभेद है और फिर वहां की अन्दरूनी हालत के बारे में हमारी जानकारी भी कम है। यह स्वाभाविक है कि वहां विचार स्वातन्त्र्य के मौलिक अधिकार को मानवीय प्रगति के उस उच्च सोपान पर प्रतिष्ठित न किया गया हो जिस पर वैदिक समाजवाद उसे देखना चाहता है पर भौतिकवादी जीवन दर्शन के बावजूद आज रूस और चीन को हम गुलामों या जानवरों का देश हरगिज नहीं कह सकते। इतना झूठ तो दुश्मन के बारे में भी नहीं बोलना चाहिए, जितना पूंजीवाद के दलाल रूस चीन के बारे में उगलते हैं। यदि सचमुच ये देश विचार स्वातन्त्र्य से वंचित होकर सरकार नामक मुट्ठी भर लोगों के क्रीत दास होते और वहां पशुओं का नंगा नाच हो रहा होता तो इतने थोड़े समय में वे इतनी आश्चर्यजनक भौतिक एवं सांस्कृतिक प्रगति न कर पाते। कहावत है हाथ कंगन को आरसी क्या—पिछले ५० सालों में आज रूस दुनियां की प्रथम श्रेणी की शक्ति बनकर खड़ा हो गया और २५ साल से कम का चीन आज दूसरी श्रेणी की ताकतों में आ खड़ा हुआ। जबकि चीन से दो साल पहले आजाद हुआ हमारा अपना देश आज किसी गिनती में नहीं आता।

वैदिक समाजवाद और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता-२

प्रश्न—यह ठीक है कि आज रूस और चीन विश्व शक्ति के रूप में उभर कर सामने आ गये हैं और हमारा अपना देश इनके मुकाबले में काफी पिछड़ा हुआ है। पर इन देशों की प्रगति का कारण विचार स्वातन्त्र्य नहीं है वरन उल्टे उनकी सरकारों द्वारा अपनी जनता से गुलामों की तरह काम करवाना है। हम प्रजातन्त्र के पुजारी हैं—गरीब से गरीब आदमी को भी पूरी आजादी है पर चीन या रूस में जबरदस्ती काम करना पड़ता है—संगीन की नोंक पर जिस देश में काम कराया जा रहा हो वह देश भौतिक उन्नति में आगे बढ़ जाता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

उत्तर—यह भी बड़ा भारी भ्रम है कि किसी देश की करोड़ों करोड़ जनता को संगीन की नोक पर काम करा के कोई देश तरक्की कर सकता है। और फिर ऐसे बहुत थोड़े काम हैं जिन्हें जोर जबरदस्ती अथवा भय दिखा कर कराया जा सकता है पर कला एवं साहित्य में मौलिक चिन्तन, वैज्ञानिक आविष्कार तथा सांस्कृतिक चेतना का विकास बिना स्वतन्त्रता के सम्भव ही नहीं। आज रूस और चीन के वैज्ञानिक भूगर्भ शास्त्र की अतुल गहराइयों से लेकर चांद और मंगल तक की उड़ानें ले रहे हैं तो यह सोचना ही हास्यास्पद है कि वे ऐसा इसलिए कर रहे हैं क्योंकि हरेक वैज्ञानिक के पीछे एक सैनिक अपनी मशीनगन लिये खड़ा है और कह रहा है कि जल्दी करो, तीन दिन के अन्दर-अन्दर नया अविष्कार करके दो वरना गोली मार दी जाएगी। क्या ऐसे भय और आतंक के वातावरण में कोई मौलिक चिन्तन सम्भव हो सकता है? इसी तरह खेलकूद एक ऐसी चीज है जिसमें आप खिलाड़ी को डराकर अच्छा खेलने को बाध्य नहीं कर सकते। जब ओलम्पिक्स के मैदान में रूस के खिलाड़ी अमेरिका के आगे निकल कर अधिक स्वर्ण पदक प्राप्त करते हैं तो क्या यह समझा जाय कि इन खिलाड़ियों को रूसी सरकार मे कोर्ट मार्शल का भय दिखा रखा था?

कल तक अफीमचियों और वेश्याओं का देश कहलाने वाला चीन यदि आज दुनियां का सबसे अधिक अनुशासित, सबसे अधिक स्वच्छ और नैतिक चरित्र की दृष्टि से सबसे आगे है तो क्या यह सब डण्डे के जोर से हुआ है ? अर्थशास्त्र में एक कहावत है कि (You can lead a horse to water but cannot make it drink) अर्थात् आप घोड़े को पानी के पास तो ले जा सकते हैं पर पानी पीने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। जो बात जानवर के लिए है वह इन्सान के लिये तो और भी अधिक सच है। आप संगीन के भय से चित्रकार के हाथों तूलिका तो पकड़ा सकते हैं पर उच्चकोटि की चित्रकला का विकास नहीं कर सकते। वीणा के तारों को झंकृत कर अनुपम लय की सृष्टि नहीं कर सकते। कवि की लेखनी को हृदयस्पर्शी भावनाओं से गुम्फित नहीं कर सकते। डण्डे की एक सीमा होती है, कतिपय असामाजिक तत्त्वों को राह पर लाने के लिए डण्डा कारगर सिद्ध हो सकता है, पर समूचे समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति डण्डे के बल पर अकल्पनीय है।

इधर चीन और रूस के मुकाबले में भारत के बुरी तरह पिछड़े होने के लिए आपने प्रजातन्त्र की दुहाई दी है, गरीब आदमी की आज़ादी की बात कही है। आप ही क्यों, देश की प्रधान मन्त्री भी देश की अधोगति को "अधिक नागरिक स्वतन्त्रता" की आड़ में उचित ठहराने की कोशिश करती है। क्या है यह नागरिक स्वतन्त्रता ? किसके लिए है ? देश के संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार बड़े मोटे अक्षरों में लिखा है पर भूख से बिलबिलाती ५६ करोड़ मानवता के लिए दो जून रोटी का मौलिक अधिकार कहीं नहीं है, अवसर की समानता का मौलिक अधिकार कहीं नहीं है, रोजगार का मौलिक अधिकार कहीं नहीं है। भूख से छटपटाते बालक को रोटी की नहीं, भाषण की आजादी है। मां बाप की धरती गिरवी रखकर पढ़ने वाले होनहार लड़के को रोजगार की नहीं, अखबार निकालने की आजादी है। हर पांच साल में एक बार चुनाव का नाटक रच कर देश की गरीब और अशिक्षित जनता को एक हाथ से मतदान का अधिकार देकर और दूसरे हाथ से पैसा बिखेर वोट बटोरने की आजादी है। यही है वह प्र...जा...त...न्त्र जिसके सर्वोच्च नेता को यह आजादी है कि वह अपने चुनाव में पूंजीपतियों से सांठगांठ करके लाखों रुपया पानी की तरह बहाये, लेकिन

निर्वाचन आयोग को पेश किए गए विवरण में अपने चुनाव का खर्च केवल १६,३५१ रुपये १३ पैसे दिखाये। उसे अधिकार है भूखी नंगी जनता को समाजवाद के झूठे वायदे करके अपने लड़के के लिए ३८० एकड़ जमीन पर २५ करोड़ का कारखाना लगवाये। यह वह प्रजातन्त्र है जिसकी रक्षा की सर्वोच्च जिम्मेदारी लेने वाले व्यक्ति को लगातार दस साल तक लाखों रुपये टैक्स की चोरी करने के बाद सजा के बदले "भूल जाने का" अधिकार है। यही है वह प्रजातन्त्र जिसमें एक पूंजीपति को यह आजादी है कि वह हजारों मजदूरों का निर्मम शोषण कर अपनी परिसम्पत्ति २७ करोड़ से बढ़ाकर २५ साल में ६०० करोड़ रु० कर ले। दूसरी तरफ २२ करोड़ मेहनतकश जनता को भी यह "आजादी" है कि वह रोज तीन आने प्रति व्यक्ति आमदनी के हिसाब से गुजारा करे। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई की सड़कों को अपने पसीने से धोने वाले मजदूरों को यह आजादी है कि रात की कड़कती सर्दी में २४-२४ मंजिल की वातानुकूलित अट्टालिकाओं के सामने फुटपाथ पर चिथड़ों में दम तोड़ दें। गांवों में बसने वाली देश की ८० प्रतिशत जनता को यह आजादी है कि वह अपने खून पसीने की कमाई को चन्द शहरों की रौनक बढ़ाने की खातिर लुटाकर स्वयं भिनभिनाती मक्खियों का संगीत सुनते हुए, सड़ती हुई कीचड़ की सुगंध लेते हुए और निरन्तर उड़ती हुई धूल को फाँकते हुए मस्त रहे। आजादी के २५ साल बाद देश के ५६ में से ४० करोड़ जनता को यह आजादी है कि वह स्कूल का मुंह तक न देख सके और जीवन भर अविद्या-अन्धकार के बियावान जंगल में भटकती रहे। एक ओर पूंजीपतियों को जहाँ यह आजादी है कि वे चार-चार ट्यूशन के बावजूद मैट्रिक में तीन-तीन साल फेल होने वाले अपने नालायक निकम्मे बेटों को, अपनी कम्पनियों का डायरेक्टर बना दें वहां दूसरी ओर देश के १० करोड़ होनहार एवं ईमानदार नौजवानों को भी यह आजादी है कि वे बेरोजगारी के चक्कर में दर-दर की ठोकरें खाते रहें। एक ओर जहाँ पूंजीपतियों को आजादी है कि वे पेटदर्द की सामान्य शिकायत पर टेलीफोन करके अपना फेमिली डाक्टर अपने घर बुला लें वहां दूसरी ओर करोड़ों दीनहीन निर्धन परिवारों को भी यह आजादी है कि वे सामान्य चिकित्सा सुविधा के अभाव में तड़प-तड़प कर असमय में काल के कराल गाल में समा जायें।

यदि इन्हीं सारी चीजों का नाम है नागरिक स्वतन्त्रता और आजादी, तो बरबादी किस चिड़िया का नाम है ? बेईमानी और मक्कारी किस चीज का नाम है ? ऐसी आजादी को लानत है, ठोकर है।

प्रश्न—देखिये आप आवेश में आ गये हैं और मूल प्रश्न को छोड़ बैठे हैं। हमारा प्रश्न था—भाषण और लेखन की आजादी का। जहां तक सवाल है देश में व्याप्त गरीबी का, आर्थिक विषमता और शोषण का, इन सारी बातों को हम भी स्वीकार करते हैं, पर कहना यह चाहते हैं कि आज तो आप इन विकराल समस्याओं से लेकर छोटी-छोटी बातों के लिए भी सरकार की खुलकर आलोचना कर सकते हैं, स्टेज पर खड़े होकर सरकार के बड़े से बड़े आदमी को सौ बातें सुना सकते हैं, अखबारों में कालम के कालम उनकी आलोचना में लिख सकते हैं। नाटक खेलकर, सिनेमा बनाकर, अपने मनचाहे स्कूल, कालेज, गुरुकुल खोलकर, किताबें छपाकर, नये-नये मत मतान्तर और सम्प्रदाय चला कर और नये नये विरोधी राजनैतिक दल बनाकर जब और जैसा चाहें लिख-बोल सकते हैं, अपने विचारों को जनता के सामने प्रकट कर सकते हैं, आपको हर किस्म की वैधानिक अभिव्यक्ति की मौलिक स्वतन्त्रता है। इन सब मूलभूत अधिकारों का स्त्रोत है "सम्पत्ति का मौलिक अधिकार" ! जिस दिन उत्पादन के साधन राष्ट्र के हो जायेंगे, उस दिन इन सारी सुविधाओं का जनाजा निकल जायेगा। हमें यह भय है कि उस दिन से केवल एक ही सरकारी अखबार होगा, सरकारी रेडियो, सरकारी टेलीविजन, सरकारी भाषण, सरकारी सिनेमा और एक ही सरकारी राजनैतिक पार्टी होगी। जो कोई सरकार के रवैये की आलोचना या निन्दा करना चाहेगा वह झट जेल के अन्दर ! और जो कोई ज्यादा जुर्रत करेगा उसको बड़े प्यार से यमलोक भेज दिया जाएगा। हमारा सवाल यह है कि क्या वैदिक समाजवाद में वैयक्तिक सम्पत्ति के समाप्त होते ही इस प्रकार की तानाशाही नहीं होगी ? क्या अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन नहीं होगा ? क्या विरोधी दलों और विरोधी स्वरों को समाप्त नहीं कर दिया जायेगा ? संक्षेप में क्या स्वतन्त्र भाषण और लेखन जैसे इन्सानियत के मूल तत्वों की रक्षा होगी ?

उत्तर—आप एक साथ कई भ्रमों के शिकार हैं और आपकी चिन्तन धारा भी गलत दिशा में है। आपके लम्बे चौड़े सवालों को सुनने से यह प्रकट होता है कि आप इन्सान की रोटी, कपड़े और मकान, उसकी

पढ़ाई और दवाई को तो इन्सानियत का गौण तत्त्व मानते हैं और स्टेज पर भाषण देने को तथा सरकार की आलोचना में अखबार निकालने को इन्सानियत का मूलतत्त्व मानते हैं। इसी धारणा पर आधारित आपका गलत निष्कर्ष है कि इस पूंजीवादी व्यवस्था में बेशक हम भूखे हैं, नंगे हैं, शोषित और पीड़ित हैं, पर चूंकि हमें भाषण और लेखन की आजादी है इसलिए हमारी इन्सानियत भी जिन्दा है। इसके विपरीत वैदिक समाजवाद भाषण और लेखन आदि नागरिक स्वतन्त्रता के अधिकारों की पवित्रता और महत्ता को स्वीकार करते हुए यह मानता है कि जिस सड़ी गली पूंजीवादी व्यवस्था में बहुसंख्यक मेहनतकश तबका भूखा और नंगा, शोषित और पीड़ित है, उस व्यवस्था में भाषण और लेखन की आजादी पूंजीपतियों और उनकी दलाल सरकार के लिए तो सार्थक हो सकती है, पर उनके लिए बेमानी है जो इस **देश के असली** मालिक हैं। उल्टा इस सीमित और संकुचित अर्थ में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का दुरुपयोग पूंजीपतियों द्वारा अपनी व्यवस्था को बरकार रखने, अधिक शोषण करने और क्रांति में रुकावट डालने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए हमारे देश के पूंजीपतियों को यह अधिकार है कि वे अश्लील से अश्लील सिनेमा बनाकर वासना और भडुऐपन का खुले आम प्रदर्शन कर एक ओर गरीब जनता का चरित्र गिराकर उन्हें क्रांति के लायक न रहने द और दूसरी ओर उन्हीं का पैसा लूट कर अपनी तिजोरियां भर लें। इसके विपरीत समाजवादी क्रांति के लिए किसान मजदूरों को व्यवस्था परिवर्तन के लिए आह्वान करने वाली फिल्मों पर, सरकार की सेन्सर बैठ जाती है।

आपकी यह सरकार आपको इस बात की आजादी देती है कि आप वैचारिक स्वतंत्रता की आड़ में खुल्लमखुल्ला नंगी औरतों की तस्वीरें छापकर और किसलय से कोमल किशोरों के कौमार्य को कलुषित करने के लिए भद्दी कहानियां गढ़कर रेलवे स्टेशन के बुक स्टालों और शहर की हर दुकान, यहां तक फुटपाथों पर बेच लें और इसके बाद अखबारों में "नामर्दी" के शर्तिया इलाज के विज्ञापन छपवाकर, दुकान भी चमका लें, पर सशस्त्र क्रांति के लिए आह्वान करने वाले परचों को छापने, लिखने और बांटने वालों को जेल की सीखचों में जकड़ दिया जाता है। रेडियो और

टेलीविजन जैसे शक्तिशाली और व्यापक प्रसारण माध्यमों पर दलाल पूंजीवादी सरकार का एकाधिपत्य है। इनमें सुबह से लेकर शाम तक हिजड़ों के भौंडे गीत तो बजाये जा सकते हैं, रोटी के टुकड़ों के लिए तरसती जनता को शृंगार एवं विलास प्रसाधनों के विज्ञापन सुना सुना कर उसकी बेबसी का मजाक तो उड़ाया जा सकता है पर सरकार की आलोचना अथवा क्रांति के समर्थन में एक शब्द भी नहीं कहा जा सकता।

वैदिक समाजवाद और सिनेमा उद्योग

महामहिम राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने पिछले दिनों बड़े वेदना पूर्ण शब्दों में यह कहा था—कि पिछले २५ सालों में हमारा राष्ट्रीय चरित्र काफी गिर चुका है और हम अभी चरित्र के संकट दौर से गुजर रहे हैं। महामहिम राष्ट्रपति की ये बातें बिल्कुल सत्य है। पर दुःख इस बात पर होता है कि उन्होंने यह क्यों नहीं बताया कि देश का चरित्र गिरा कौन रहा है? शायद उनकी जुबान पर इस का जवाब न निकल सके क्योंकि साफ जाहिर है कि इस देश की चारित्रिक गिरावट के लिए वे स्वयं और उनकी सरकार जिम्मेदार है।

सिनेमा जैसे विचारों के प्रचार एवं प्रसार का सबसे प्रबल साधन आज जितनी बुरी तरह से देश का चरित्र बिगाड़ रहा है, क्या परोक्ष में इस के पीछे सरकार का हाथ नहीं है? सिनेमा के परदे पर दिखाई जाने वाली चीज एक बालक से लेकर वृद्ध तक और अनपढ़ से लेकर पढ़े लिखे के मन पर बहुत गहरा असर डालती है। भारत जैसे देश में निर-क्षरता एवं साधनहीनताके कारण मनोरंजन के अन्य साधनों के अभाव होने के कारण सिनेमा की लोकप्रियता अत्यन्त स्वाभाविक है। भारत जैसे देश में सिनेमा जैसे प्रभावशाली साधन का सही प्रयोग किया जाय तो लोगों के स्वस्थ मनोरंजन के साथ साथ सामाजिक एवं वैचारिक क्रान्ति लाई जा सकती है। पर इस के विपरीत सरकार ने इतने प्रभावशाली साधन को स्वार्थी पूंजीपतियों के हाथों में सौंप कर गरीबों का खून चूस कर सारे देश को चरित्र हीन बनाने का लाइसेंस दे रखा है। पूंजीपति जानता है कि भोली जनता को गन्दे, अश्लील और कामुकता भरे नाच गाने दिखाकर वह उस का पैसा एंठ सकता है। और जब वह इस बात पर तुल जाता है तो सेंसर बोर्ड के कानून भी पूंजीपति की चपेट में आ जाते हैं। रुपया बनाने की इस होड़ में सिनेमा उद्योग के बड़े बड़े पूंजी-पति देश के प्रति, राष्ट्र के प्रति और राष्ट्र की भावी पीढ़ी के प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझते। उनका अपना निकृष्ट स्वार्थ

ग्रौर उनकी ग्रपनी निकृष्ट वासना उनका एक मात्र लक्ष्य रह जाता है। इनमें यदि कुछ ग्रपवाद हो तो वे भी उपरोक्त नियम को ही सिद्ध करते हैं।

यही कारण है कि ग्राज फिल्म उद्योग में काम करने वाले चोटी के कलाकार लाखों रुपये टैक्स की चोरी करते हैं, कालाधन ग्रपने बाथरूमों में छुपाकर रखते हैं, महा ऐय्याशी और शराब खोरी की जिन्दगी बिताते हैं और इतना सारा ग्रसामाजिक कार्य करने के बाद भी वे इस पूंजीवादी व्यवस्था में जनता के 'हीरो' बने रहते हैं —उन्हें बड़ा यश मिलता है, विदेशी कारों में घूमते हैं, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास जैसे नगरों में सबसे कीमती मकानों में ठाट से रहते हैं। यह सब इसलिए कि उन्हें इस बात की खुली छूट है कि वे मनुष्य की काम सम्बन्धी कमजोरी का खुलकर शोषण करें और सारे देश के चरित्र का गला घोंट कर ग्रपनी एय्याशी और बदमाशी के लिए लाखों करोड़ों रुपए कमा लें !

सिनेमा के कलाकारों का इतना महत्त्व बढ़ने के बाद सिनेमा सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं से किताबों की दुकानें भर जाती हैं। रंग-बिरंगी चित्रों में कलाकारों के ग्रन्तरंग जीवन की झांकी पढ़ने के लिए जनता का बहुत बड़ा वर्ग बेताब रहता है। उधर रेडियो पर सुबह से लेकर रात के ११ बजे तक इन्हीं सिनेमा के अश्लील गीतों का भारत सरकार इतने बोभत्स ग्रौर बेहयापन से प्रचार करती है कि देश का बचा खुचा हुग्रा चरित्र ग्रौर भी समाप्त हो जाता है। सड़कों पर लगे हुए पोस्टरों की अश्लीलता भी दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

इस तरह सिनेमा ने सारे देश के नैतिक मापदण्ड को झकझोर के रख दिया है और ग्राज के युवक के सामने भी हिजड़ों की तरह नाचने वाले कलाकार ही आदर्श रह गए हैं। स्कूलों में पढ़ने वाले छोटे छोटे बच्चे भी ग्रभिनेताग्रों से पत्र-व्यवहार करते रहते हैं ग्रौर उनके हस्ताक्षर युक्त फोटो प्राप्त करना बहुत बड़ी उपलब्धि मानते हैं। जिस देश में इस प्रकार कामुकता, ग्रश्लीलता, और हिजड़ेपन की ग्रांधी सी चल पड़े उस देश में कठोर परिश्रम, तप, त्याग, संयम और समाजवाद की भावना कभी पनप नहीं सकती।

सिनेमा उद्योग के इस दूषित प्रभाव को रोककर इसके विशाल प्रभावशाली साधनों से राष्ट्र में पुनर्जागरण का शंखनाद करने के लिए हमें एक क्रांतिकारी कदम उठाना पड़ेगा। जैसा कि पिछले अंक में उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण द्वारा देश की आर्थिक समस्या के समाधान की बात कही गई थी, उसी प्रकार वैदिक समाजवाद के अन्तर्गत देश के मानसिक और नैतिक समस्या के समाधान के लिए सिनेमा उद्योग का भी अविलम्ब राष्ट्रीयकरण जरूरी है। जब तक यह उद्योग व्यक्तिगत मुनाफाखोरी के पिपासु पूंजीपतियों के हाथों रहेगा तब तक इसके कुप्रभाव को किसी तरह कम नहीं किया जा सकता।

आर्य राष्ट्र के निर्माण में सिनेमा उद्योग का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान होगा। इस उद्योग का पूर्ण राष्ट्रीयकरण करके हमें इसे वही महत्व देना होगा जो हम अपनी शिक्षण संस्थाओं को देते हैं। आर्य राज्य के प्रत्येक ग्राम में सिनेमा घर होंगे जिनमें बहुत सस्ते दरों पर चलचित्रों का प्रदर्शन होगा। ये चलचित्र महान आदर्शों पर बने हुए, देशभक्ति, चरित्र और समाजवाद की भावना से कूट-कूट कर भरे होंगे। इनको देखकर जहां एक ओर लोगों का स्वस्थ मनोरंजन होगा वहां दूसरी ओर उन्हें सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक क्रांति के लिए जबरदस्त प्रेरणा मिलेगी और सारा देश एक नई चेतना, एक नये स्पन्दन और एक नई अनुभूति से अभिभावित हो उठेगा। इन चलचित्रों के माध्यम से देश के नागरिकों में व्याप्त नैतिकता और साहसिकता के मूल्यों में भारी परिवर्तन लाने का प्रयास किया जायगा। युवकों के सामने हिजड़ों की तरह कमर मटका कर नाचने वाले ये आज के बदमाश गुण्डे आदर्श नहीं होंगे बल्कि अपने शौर्य, पराक्रम, त्याग और बलिदान से राष्ट्र को एक नई दिशा देने वाले उन महापुरुषों का आदर्श होगा जिनकी आज इस देश को महती आवश्यकता है।

इसके साथ ही सिनेमा के माध्यम से समाज की उन भयंकर बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया जायगा जिनका निराकरण केवल कानून की धाराओं से नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए समाज में व्याप्त छुआछूत के कोढ़ को मिटाना, दहेज की कुप्रथा, बाल विवाह के कुपरंपरा आदि समाप्त करना। समाज के पिछड़े वर्गों में सदियों से

जो कुण्ठा घर कर गई है और जिसकी वजह से वे अपने आपमें आत्म-हीनता का बोध करते हैं उसे चलचित्र जगत के माध्यम से बदला जा सकता है और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा के धरातल पर लाकर खड़ा किया जा सकता है। इसी तरह राष्ट्र के महिला वर्ग की आत्महीनता को धोकर उनमें आत्मविश्वास और साहस का संचार किया जा सकता है।

जब चलचित्र बदलेंगे तो रेडियो के गीत भी बदलेंगे और आज के महा निकम्मे, महा बेहूदे गीतों की जगह शूरता, वीरता और साह-सिकता के तरानों से देश झूम उठेगा। उन गीतों में शोषण के खिलाफ विद्रोह का आह्वान होगा, गरीबों के पाप को आमूल नष्ट करने का संकल्प होगा—एक नये समाजवादी, आध्यात्मवादी राष्ट्र की कल्पना का उल्लास हिलोरें लेगा और सारे राष्ट्र के म्रियमाण जीवन में क्रांति के नये स्फुरण का संचार होगा। दुकानों पर बिकने वाला साहित्य भी बदलेगा और चौराहों पर लगने वाले पोस्टर भी बदलेंगे। एक नये आदर्श की हवा देश में चलेगी। जन जीवन में आज जो फूहड़पन और लिच्चड़पन नजर आता है वह दूर हो जायगा और उसकी जगह सादगी और संयम की गरिमा अपने वास्तविक सौंदर्य के साथ प्रकट होगा।
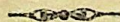
अमर शहीद बिस्मिल की तड़प

"जिसके हृदय में भारतवर्ष की सेवा के भाव उपस्थित हों, या जो भारतभूमि को स्वतन्त्र देखने या स्वाधीन बनाने की इच्छा रखता हो, उसे उचित है कि ग्रामीण संगठन करके कृषकों की दशा सुधार कर, उनके हृदय से भाग्य-निर्भरता को हटाकर उद्योगी बनाने की शिक्षा दें। कल-कारखाने, रेलवे, जहाज तथा खानों में जहां कहीं श्रमजीवी हों, उनकी दशा को सुधारने के लिए श्रमजीवियों के संघ की स्थापना की जाए, ताकि उनको अपनी अवस्था का ज्ञान हो सके और कारखानों के मालिक मन-माने अत्याचार न कर सकें और अछूतों को, जिनकी संख्या इस देश में लगभग छः करोड़ है, पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबन्ध हो तथा उन को सामाजिक अधिकारों में समानता मिले। जिस देश में छः करोड़ मनुष्य अछूत समझे जाते हों, उस देश के वासियों को स्वाधीन बनाने का अधिकार ही क्या है? इसी के साथ ही साथ स्त्रियों की दशा भी इतनी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे पैर की जूती तथा घर की गुड़िया न समझी जाएँ। इतने कार्य हो जाने के बाद जब भारत की जनता अधिकांश शिक्षित हो जाएगी, वे अपनी भलाई-बुराई समझने के योग्य हो जाएँगे, उस समय प्रत्येक आन्दोलन जिसका शिक्षित जनता समर्थन करेगी, अवश्य सफल होगा। संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी उसके दबाने में समर्थ न हो सकेगी।"

शहीद भगतसिंह की हुंकार

"समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूर को उसके प्राथमिक अधिकार से वंचित रक्खा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसानों के बच्चे दाने-दाने के मुहताज हैं। कपड़ा बनाने वाले बुनकरों के बच्चे नंगे घूमते हैं। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, बढ़ई, लोहार तथा बेलदार गन्दे बाड़ों में रहकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के लिए जोंक, शोषक पूंजीपति जरा-जरा सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनियां को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट हैं कि आज का धनी वर्ग एक भयानक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठ कर रंग रलियां मना रहा है..."

(असेम्बली बम केस में दिये गए १६२६ के ब्यान से)

"......हम मनुष्य जीवन को पवित्र मानते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता और समानता मिल सके। हम इन्सान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुःखी हैं, परन्तु समानता और स्वतन्त्रता एवं मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रांति में कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है......।"

(१६२६ असेम्बली में बम फेंकते समय बांटे गये पर्चे का एक अंश)

"......मानवता को प्यार करने में हम किसी से पीछे नहीं हैं, हमें किसी से व्यक्तिगत द्वेश नहीं है और हम प्राणी मात्र को हमेशा प्यार की दृष्टि से देखते हैं......"